PG HN S1-01 (DSC)

TWO YEAR POSTGRADUATE PROGRAMME

(CBCS and Accordance with NEP 2020)

हिंदी साहित्य का इतिहास

(आदिकाल और भक्तिकाल)

First Semester

HINDI SAHITYA KA ITIHAS

(ADIKAAL AUR BHAKTIKAAL)

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम
बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत्त विभागाधक्ष्य)
ठक, अध्यक्ष्य, बी. एस. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम

यक : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

टीम

Contributors

योगदानकर्ताओं के नाम

डॉ. पल्लबी दास, अध्यक्ष्य, आदर्श विद्यालय, हाजो

परीक्षित नाथ, सहायक अध्यापक, दुमदुमा महाविद्यालय

डॉ. दीपक गुप्ता, सहायक अध्यापक, जी.एल.ची महाविद्यालय, बरपेटा

डॉ प्रांजल कुमार नाथ

m

: प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष्य बी.एस.कॉलेज हाउली, बरपेटा, असम

: डॉ.अब्दुल लतीफ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

Format : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय

024 **ISBN :**

s Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta Handiqui State University is
le under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-ShareAlike4.0 License
) : http.//creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/4.0

ublished by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

Headquarters: Patgaon, Rani Gate, Guwahati-781017
NH 37, Resham Nagar, Khanapara, Guwahati-781022 Web: www.kkhsou.in

CONTENTS

Page No.

इकाई 1 : हिंदी साहित्येतिहास दर्शन 7–13

इतिहास अर्थ एवं स्वरुप, हिंदी साहित्य इतिहास की परंपरा।

इकाई 2 : हिंदी इतिहास का काल विभाजन और नामकरण 14–20

हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन, कालविभाजन के आधार, नामकरण एवं सीमांकन।

इकाई 3 : आदिकाल 21–31

पृष्ठभूमि, आदिकालीन लौकिक साहित्य, आदिकाल को किसने क्या नाम दिया, आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, आदिकालीन साहित्यिक उपलब्धियाँ, आदिकाल का पहला कवि।

इकाई 4 : आदिकालीन रासो साहित्य 32–40

'रास' और 'रासो' से तात्पर्य, रासो शब्द की व्युत्पत्ति, प्रमुख रासो ग्रन्थ और उनके रचयिता का परिचय।

इकाई 5 : भक्तिकाल 41–50

भक्ति आन्दोलन उदय संबंधी विभिन्न मत, भक्तिकालीन परिस्थितियाँ, भक्तिकालीन शाखाओं का सामान्य परिचय, भक्तिकाल का वर्गीकरण।

इकाई 6 : संत काव्य 51–57

संत काव्य परम्परा और प्रमुख कवि, संत काव्य की प्रवृत्तियाँ।

इकाई 7 : सूफीकाव्य 58–64

सूफी काव्य परंपरा और इस संप्रदाय प्रमुख कवि, सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ।

इकाई 8 : कृष्ण काव्य 65–72

कृष्ण काव्य का सामान्य परिचय, कृष्ण काव्य परंपरा, कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, अष्टछाप।

इकाई 9 : कृष्ण काव्य परम्परा में सूरदास 73–78

हिंदी कृष्ण काव्य परम्परा और सुर का काव्य, सूरदास के काव्य में सहृदयता और भावुकता।

भक्ति और विभिन्न संप्रदाय 79–84

संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, सखी संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, संप्रदाय
कृष्ण-काव्य।

ाव्य 85–90

व्य-सामान्य परिचय, रामभक्ति काव्य के प्रमुख कवि और रचनाएँ, राम काव्य परंपरा की
प्रवृत्तियाँ।

क्ति काव्य परंपरा में तुलसी 91–96

की भक्ति भावना, रामकाव्य परंपरा में तुलसी का स्थान।

काव्य और राम काव्य में साम्य-वैषम्य 97–100

वैषम्य।

कालीन अन्य काव्य प्रवृतियाँ 101–106

व्य, प्रबंधात्मक चरित काव्य, नीतिकाव्य, रीतिकाव्य।

विषय परिचय

कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय ने 2024 से एम.ए. हिंदी के दो वर्षीय पाठ्यक्रम का पेशकश करने जा रहा है। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत चार सेमेस्टर होंगे, जिन्हें क्रमशः सेमेस्टर- I, II, III और IV के रूप में जाना जाएगा। प्रत्येक सेमेस्टर के अंतर्गत चार पेपर होंगे, जिनमें से तीन मूल और एक वैकल्पिक पेपर होगा।

आपके समक्ष इस दो वर्षीय पाठ्यक्रम का पहला मूल पेपर (सेमेस्टर-I) **''हिंदी साहित्य का इतिहास (आदिकाल और भक्तिकाल)''** अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। यह पेपर इतिहास का अर्थ एवं स्वरूप, हिंदी साहित्य के इतिहास की परंपरा, आदिकाल की पृष्ठभूमि, आदिकालीन साहित्य तथा भक्तिकाल की पृष्ठभूमि और भक्तिकालीन साहित्य पर आधारित है। इस पेपर में कूल चौदह इकाइयाँ हैं।

इकाई 1 का शीर्षक **'हिंदी साहित्येतिहास दर्शन'** है। इस इकाई में इतिहास के अर्थ, स्वरूप और हिंदी साहित्य के इतिहास के बारे में आलोचना की गयी है। हमें अपने देश, संस्कृति और अपने धरोहर को जानने के लिए इतिहास की जानकारी आवश्यक है, क्योंकि इतिहास में राजनीति, समाजनीति, धर्म, कला आदि सभी का वर्णन यथार्थ होता है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल, कविमाला, कालिदास हजारा आदि रचनाओं में हिंदी के अनेक कवियों के जीवनवृत्त और कृतित्व का परिचय दिया गया है। लेकिन इनमें कालक्रम, सन-संवत् आदि का अभाव होने के कारण इन्हें पूर्णतः इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस प्रकार हिंदी साहित्य में इतिहास लेखन की परंपरा 19 वीं सदी से मानी जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन का सबसे पहला प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर एन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी' के माध्यम से किया। इसका प्रथम भाग सन् 1839 में तथा द्वितीय भाग 1847 ई. में प्रकाशित किया गया।

इकाई 2 का शीर्षक **'हिंदी इतिहास का काल विभाजन और नामकरण'** है। इस इकाई में हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता के साथ साथ काल विभाजन और नामकरण में आने वाली समस्याओं तथा काल विभाजन एवं नामकरण सम्बन्धी विवादों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई 3 **'आदिकाल'** शीर्षक से है। इस इकाई में आदिकाल का नामकरण, आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ, आदिकाल का पहला कवि, आदिकालीन विभिन्न साहित्य और आदिकालीन विभिन्न परिस्थितियों के बारे में आलोचना की गयी है।

इकाई 4 का शीर्षक **'आदिकालीन रासो साहित्य'** है। इस इकाई में रासो शब्द की व्युत्पत्ति, प्रमुख रासो ग्रन्थ और उनके रचयिता के बारे जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

इकाई 5 **'भक्तिकाल'** शीर्षक से है। इस इकाई में भक्ति आन्दोलन के उदय के कारणों, भक्तिकालीन विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न शाखाओं के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

इकाई 6 का शीर्षक है **'संत काव्य'**। इस इकाई में प्रमुख संत कवि, संत काव्य परंपरा और संत काव्य की प्रवृत्तियों के बारे जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

'**सूफीकाव्य**' शीर्षक से है। इस इकाई में प्रमुख सूफी कवि, सूफी काव्य परंपरा और सूफी काव्य की रे में आलोचना की गयी है।

'**कृष्ण काव्य**' शीर्षक से है। इस इकाई में कृष्ण काव्य परंपरा, कृष्ण काव्य का सामान्य परिचय, कृष्ण काव्य का काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

'**कृष्ण काव्य परंपरा और सूरदास**' शीर्षक से है। इस इकाई में कृष्ण काव्य परंपरा में सूरदास की भूमिका पर यी है।

० का शीर्षक '**कृष्ण भक्ति और विभिन्न संप्रदाय**' है। इस इकाई में कृष्ण भक्ति संप्रदाय के प्रमुख कवि और था कृष्ण भक्ति संबंधित विभिन्न संप्रदायों के बारे में आलोचना की गयी है।

'**रामकाव्य**' शीर्षक से है। इस इकाई में राम काव्य का सामान्य परिचय, राम काव्य के प्रमुख कवि और उनकी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर चर्चा की गयी है।

२ '**राम भक्ति काव्य परंपरा में तुलसी**' शीर्षक से है। इस इकाई में राम काव्य परंपरा में तुलसी का स्थान और भावना पर विचार किया गया है।

३ का शीर्षक '**कृष्ण काव्य और राम काव्य में साम्य-वैषम्य**' है। इस इकाई के अंतर्गत राम और कृष्ण काव्य में और विषमताओं तथा राम और कृष्ण काव्य की विशेषताओं पर चर्चा की गयी है।

४ अर्थात् अंतिम इकाई का शीर्षक '**भक्तिकालीन अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ**' है। इस इकाई के अंतर्गत वीरकाव्य, काव्य आदि विभिन्न काव्यधारा और इन काव्यधाराओं से संबंधित विभिन्न कवि तथा इन काव्यधाराओं की हिंदी ा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

काई में '**अपनी प्रगति जांचें**' शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न को अभ्यास प्रश्न के अतिरिक्त शामिल किया गया न के उत्तर का रूपरेखा '**प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)**' शीर्षक से सारांश के बाद प्रस्तुत किया गया है। ार्थियों में नए-नए प्रश्न और उन प्रश्नों के समाधान के लिए आत्मविश्वास पैदा करना है तथा प्रत्येक इकाई में महत्वपूर्ण बिंदु' शीर्षक से कुछ तथ्यों को सम्मिलित किया गया है। इससे विद्यार्थी इकाई के महत्वपूर्ण तथ्यों से प्राप्त कर सकेंगे।

तिरिक्त प्रत्येक इकाई के अंत में '**अधिक जानने के लिए पढ़ें**' शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची दी गयी ार्थी के लिए अत्यावश्यक है। विषय की गहरी जानकारी के लिए सारी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

इकाई 1 : हिंदी साहित्येतिहास दर्शन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 इतिहास अर्थ एवं स्वरूप
1.4 इतिहास दर्शन की रूपरेखा
1.5 हिंदी साहित्य इतिहास की परंपरा
1.6 सारांश
1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
1.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- इतिहास का अर्थ और साहित्येतिहास के दर्शन से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास संबंधी भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण संबंधी धारणाओं से अवगत होंगे।
- इतिहास लेखन की परम्पराओं से भी परिचय प्राप्त करेंगे।

1. 2 प्रस्तावना

इतिहास मुलत: भूतकाल से संबंध रखता है, जो हमें वर्तमान में प्रेरणा देते हुए भविष्य की ओर सजग करते हैं। साहित्य और सस्कृति सभ्यता का धरोहर है। अत: इतिहास के संबंध में हम कह सकते हैं कि हमें अपने देश को, संस्कृति को और हमारे धरोहर को अच्छी तरह से जानने के लिए इतिहास को जानना आवश्यक है, जिसमें राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, धर्म, कला आदि सभी का वर्णन स्पष्ट रूप से उल्लेख रहता है। हिंदी साहित्य का इतिहास वस्तुत: आधुनिक काल से माना जाता है, मगर इससे पहले भी कुछ इतिहास से संबंधित ऐसे पुस्तक नजर आए हैं, जिसमें इतिहास पूर्णतया न होने के बावजूद भी इसे इतिहास से अलग नहीं माना जा सकता।

प्राचीन काल से ही इतिहास को अध्ययन के एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है, लेकिन अद्येयता के दृष्टिकोण एवं पद्धति के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा है।

1.3 इतिहास अर्थ एवं स्वरूप

इतिहास शब्द की उत्पत्ति इति-ह-आस, इन तीनों शब्दों से हुई है, जिसका अर्थ है - निश्चित रूप से ऐसा ही हुआ। डॉ. नगेंद्र के इतिहास में मिले तथ्यों से भी यह कहा जा सकता है कि शाब्दिक दृष्टि से इतिहास का अर्थ है- ऐसा ही था या ऐसा ही हुआ। इससे दो बातें स्पष्ट हैं- एक यह कि इतिहास का संबंध अतीत से है, दुसरे यह कि उसके अंतर्गत केवल वास्तविक या यथार्थ घटनाओं का ही समावेश किया जाता है। उसमें उन सभी लिखित या मौखिक वृत्तों को सम्मिलित किया जाता है, जिनका संबंध अतीत की यथार्थ परिस्थितियों व घटनाओं से है और साथ ही, उसका संबंध केवल प्रसिद्ध घटनाओं से ही नहीं, अपितु उन घटनाओं से भी है, जो प्रसिद्ध न होते हुए भी यथार्थ में घटित हुई हों। संक्षेप में, अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन व विश्लेषण को, जो कि कालविशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो, इतिहास कहा जा सकता है।

इतिहास के स्वरूप को समझने के लिए सबसे पहले इतिहास के क्षेत्र के मुख्य निर्धारित तत्वों का अध्ययन आवश्यक है। इस संबंध में जॉन लेवी का मत महत्वपूर्ण है- "इतिहास के क्षेत्र का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील है। यह सामाजिक आवश्यकता के अनुसार विकसित होता रहता है। प्राचीन काल से ही इतिहास को अध्ययन के एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता भी प्राप्त है। लेकिन अध्येयता के दृष्टिकोण और पद्धति के अनुसार इतिहास का स्वरूप भी बदलता रहा है।"

1.4 इतिहास दर्शन की रूपरेखा

इतिहास के अध्ययन में विभिन्न विद्वान विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों का प्रयोग करते हैं और ये दृष्टिकोण समय-समय पर बदलते भी रहे हैं। जिनमें इतिहास के संबध में प्रयुक्त व प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोणों, धारणाओं तथा विचारों का अध्ययन किया जाता है और इतिहास संबंधी इन्हीं विचारों अथवा धारणाओं के समूह को इतिहास दर्शन की संज्ञा दी जाती है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- इतिहास का संबंध सिर्फ अतीत से है और इसके अंतर्गत वास्तविक या यथार्थ घटनाओं का ही समावेश किया जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण इतिहास को लेकर प्राय: आदर्शमुलक एवं अध्यात्मवादी रहा है, इसीलिए उसमें भौतिक जगत की स्थूल घटनाओं में भी आध्यात्मिक तत्वों व प्रवृत्तियों के अनुसंधान की प्रवृत्ति रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सामयिक मूल्यों की अपेक्षा चिरंतन मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है, अत: प्राचीन इतिहासकारों ने अतीत की व्याख्या उसी दृष्टिकोण से की है। डॉ. नगेंद्र के इतिहास से एक उदाहरण प्रस्तुत है- ''महाभारतकार ने

जहाँ इतिहास को एक ऐसा पूर्ववृत्त माना, जिसके माध्यम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश दिया जा सके, तो पौराणिकों ने ऋषियों एवं महापुरूषों के चरितगान को इतिहास के रूप में स्वीकार करते हुए घटना की अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्व प्रदान किया। यद्यपि आगे चलकर बाण, कल्हण आदि इतिहासकारों ने इससे भिन्न दृष्टि को अपनाते हुए आध्यात्मिक, नैतिक एवं चारित्रिक तत्वों की अपेक्षा यथार्थपरक वस्तु एवं तथ्यों को अधिक महत्व प्रदान किया, किन्तु काव्यात्मकता एवं अलंकृति का मोह वे भी न त्याग सके।'' अत: कहना उचित है कि उस युग की इतिहास में शुद्ध इतिहास की अपेक्षा काव्यात्मक इतिहास या ऐतिहासिक काव्य का ही एक रूप विकसित हुआ। जहाँ कला और नीति दोनों को प्रमुख स्थान देने की वजह से इसमें व्यावहारिक गुण तो आया मगर सैद्धांतिक दृष्टि से इसमें बहुत बड़ा दोष रह गया। फिर भी इतिहास के कलात्मक या काव्यात्मक रूप का किसी भी दृष्टि से अगर कोई महत्व है तो उसमें भारतीय इतिहासकारों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाएगा।

इसके विपरीत पश्चिमी इतिहासकारों के दृष्टिकोण इतिहास को लेकर हमेशा ही यथार्थवादी रहा है। 'इतिहास' (History) के प्रथम व्याख्याता यूनानी विद्वान हेरोडोटस ने इतिहास के चार लक्षण निर्धारित किए थे। जो इस प्रकार हैं-

1. इतिहास वैज्ञानिक विद्या है, अत: इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।
2. यह मानव जाति से संबंधित होने के कारण मानवीय विद्या (मानविकी) है।
3. यह तर्कसंगत विद्या है, अत: इसमें तथ्य और निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं।
4. यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अत: यह शिक्षाप्रद विद्या है।

प्राचीन युग में तो सामान्यत: हेरोडोटस का ही दृष्टिकोण मान्य रहा, किन्तु आधुनिक युग में विद्वानों ने इसे नये तरीके से विचार करना शुरू किया। इटालियन विद्वान विको ने इतिहास का संबंध न केवल अतीत से, अपितु वर्तमान से भी स्थापित करते हुए प्रतिपादित किया कि इतिहास का निर्माता स्वयं मनुष्य है और मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियाँ सदा समान रहती हैं, अत: विभिन्न युगों के इतिहास में भी समान प्रवृत्तियों का मिलना स्वाभाविक है। उन्नीसवीं सदी में डारविन ने विकासवादी सिद्धांत की स्थापना किए और इससे इतिहास को एक नया गति प्राप्त हुआ। डारविन के बाद विभिन्न चिंतकों ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में विभिन्न विकासवादी सिद्धांतों की स्थापना करते हुए प्रमाणित किया कि सृष्टि का कोई अंग या तत्व एकाएक घटित या रचित न होकर क्रमश: विकसिक होता है। अत: वैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'इतिहास' का अर्थ 'घटना समूह' का संकलन न होकर 'विकास-क्रम' का विवेचन है। कार्ल माक्स, हक्सले, स्पेंगलर, टर्नर आदि ने भी विकासवाद के विभिन्न पक्षों के आधार पर अपनी-अपनी दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किए हैं। अत: विभिन्न क्षेत्रों में अन्विति और कुछ कमी के बावजूद भी पाश्चात्य इतिहास दर्शन में विकासवादी सिद्धांत को ही सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक विकसित सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- भारतीय दृष्टिकोण इतिहास को लेकर प्राय: आदर्शमूलक और अध्यात्मवादी रहा है, इसके विपरीत पाश्चात्य दृष्टिकोण हमेशा यथार्थवादी रहा है।

1.5 हिंदी साहित्य इतिहास की परंपरा

हिंदी साहित्य में इतिहास लेखन का वास्तविक शुरूवात उन्नीसवीं शदी से मानी जाती है। यद्यपि इससे पहले चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल, कविमाला, कालिदास हजारा आदि की रचना हो चुकी थी, जिनमें हिंदी के विभिन्न कवियों के जीवन एवं कृतित्व का परिचय दिया गया। किन्तु इनमें कालक्रम, सन-संवत् आदि का अभाव होने के कराण इन्हें पूर्णत: इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वस्तुत: अब तक की जानकारी के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन का सबसे पहला प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने किया था। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में योगदान देनेवाले प्रमुख इतिहासकार और उनके रचनाओं का नाम निम्नलिखित हैं-

गार्सा द तासी : फ्रेंच विद्वान तासी ने सबसे पहले फ्रेंच भाषा में 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर एन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें हिंदी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्णानुक्रमानुसार दिया गया। इसका प्रथम भाग 1839 में तथा द्वितीय भाग 1847 ई. में प्रकाशित किया गया।

शिवसिंह सेंगर : शिवसिंह सेंगर ने सन् 1883 में 'शिवसिंग सरोज' नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा। इसमें लगभग एक हजार भाषा-कवियों का जीवनचरित और उनकी कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त सामग्री विश्वसनीय नहीं है।

जार्ज ग्रियर्सन : सन् 1888 में एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में सर जार्ज ग्रियर्सन का ग्रन्थ 'द मॉडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' प्रकाशन में आया। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें लेखकों और कवियों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया।

मिश्रबंधु : ग्रियर्सन के बाद मिश्रबंधुओं द्वारा 'मिश्रबंधू-विनोद' चार भागों में विभक्त कर, इसके प्रथम तीन भाग 1913 ई. में और चतुर्थ भाग का प्रकाशन 1934 ई. में प्रकाशित किया गया। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लगभग पांच हजार कवियों को स्थान दिया गया और इस इतिहास को आठ से अधिक काल-खंड में विभाजित किया।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. इतिहास के स्वरूप पर विचार कीजिए।

प्रश्न 2. भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के इतिहास संबंधी मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्येतिहास की परंपरा में सर्वोच्च स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929) को दिया जाता है। जिसका प्रकाशन मूलत: नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी शब्द-सागर की भूमिका के रूप में लिखा गया। जिसे आगे परिवर्द्धित एवं विस्तृत करके स्वतंत्र पुस्तक का रूप दिया गया। आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन की दृष्टि अधिक व्यापक, स्पष्ट, सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें कवियों और साहित्यकारों के जीवनचरित संबंधी इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन को प्रमुखता दिया गया है।

डॉ. रामकुमार वर्मा : इनके इतिहास ग्रन्थ का नाम है 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', जिसका प्रकाशन 1938 ई. में हुआ था। इस ग्रन्थ में 1693 ई. तक के काल को सात प्रकरणों में प्रस्तुत किया गया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी इस क्षेत्र में अवतरित हुए। इन्होंने 1940 में 'हिंदी साहित्य की भूमिका' नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा। इन्होंने आचार्य शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौती देते हुए उन्हें सबल प्रमाणों के आधार पर खंडित किया।

नागरीप्रचारिणी सभा : नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' प्रकाशित हुआ। इस इतिहास ग्रन्थ को सोलह भागों में प्रकाशित किया गया और प्रत्येक खंड के लिए अलग-अलग संपादक निर्धारित किया गया।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : विभिन्न विद्वानों के सामूहिक सहयोग के आधार पर लिखित इतिहास ग्रंथों में 1933 ई. में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' उल्लेखनीय है, जिसका संपादन डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने किया। इसमें सम्पूर्ण हिंदी साहित्य को तीन कालों में (आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल) विभक्त किया गया है।

हिंदी साहित्य में इतिहास से संबंधित अनेक ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार हैं-

हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक-डॉ. नगेंद्र और डॉ. हरदयाल।

हिंदी साहित्य का अतीत - श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

साहित्य का इतिहास दर्शन - डॉ नलिनविलोचन शर्मा।

हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह।

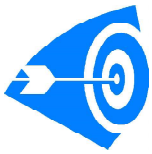
हिंदी साहित्य का आधा इतिहास - सुमन राजे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गार्सा द तासी से लेकर वर्तमान समय तक हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा जा रहा है, जिसमें हिंदी साहित्य के इतिहास को नवीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयास हो रहा है।



1.6 सारांश

इतिहास से सीधा अर्थ हम अतीत की घटनाओं से समझते हैं। मगर साहित्य में इसका अर्थ थोड़ा भिन्न है। साहित्य के इतिहास में किसी भी घटना अथवा तथ्यों का वास्तविक और यथार्थपूर्ण चित्र अंकित किया जाता है। हिंदी में इतिहास लेखन की लम्बी परंपरा रही है। इस परम्परा में विभिन्न परिवेश, समय और घटनाओं के कारण इतिहास का स्वरूप समय-समय पर बदल भी रहे हैं। जिसका सीधा प्रभाव इतिहास-दर्शन पर पड़ा है। पर जो भी हो जैसा भी हो यह सच है कि विभिन्न परिवेशों में, समयों में रचित यह इतिहासपरक ग्रंथों से अथवा इतिहास से हमें अपने देश अथवा संस्कृति की नयी-नयी तथ्यों की जानकारी मिलती हैं। जिससे हमें उस अतीत के आलोक में वर्तमान पर ध्यान रखते हुए भविष्य के लिए कुछ योजनाएँ, परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करते हैं।



1.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : इतिहास के स्वरूप को समझने के लिए सबसे पहले इतिहास के क्षेत्र के मुख्य निर्धारित तत्वों का अध्ययन आवश्यक है। इस संबंध में जॉन लेवी का मत महत्वपूर्ण है- इतिहास के क्षेत्र का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील है। यह सामाजिक आवश्यकता के अनुसार विकसित होता रहता है।

अधिक जानकारी के लिए ऊपर दिए गए **'इतिहास अर्थ और स्वरूप'** को ध्यान से पढ़िए।

प्रश्न 2 का उत्तर : भारतीय दृष्टिकोण इतिहास को लेकर प्राय: आदर्शमुलक एवं अध्यात्मवादी रहा है, इसीलिए उसमें भौतिक जगत की स्थूल घटनाओं में भी आध्यात्मिक तत्वों व प्रवृत्तियों के अनुसंधान की प्रवृत्ति रही है। इसके विपरीत पश्चिमी इतिहासकारों के दृष्टिकोण इतिहास को लेकर हमेशा ही यथार्थवादी रहा है।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए **'इतिहास दर्शन की रूपरेखा'** को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



1.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास – लक्ष्मी लाल बैरागी, संघी प्रकाशन, जयपुर।
- हिंदी साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2) – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



1.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित हिंदी साहित्य का इतिहास नामक पुस्तक की प्रकाशन कब हुई थी ?
2. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक इतिहास ग्रन्थ का लेखक कौन है ?
3. 'मिश्रबंधू-विनोद' इतिहास ग्रंथ कितने भागों में विभाजित हैं ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए –

1. इतिहास दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए ?
2. इतिहास के प्रति भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों को स्पष्ट कीजिए ?
3. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परम्पराओं पर आलोचना कीजिए ?
4. इतिहास से आप क्या समझते हैं ? इसके स्वरूपों पर आलोचना कीजिए ?

*** ***** ***

इकाई 2 : हिंदी इतिहास का काल विभाजन और नामकरण

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन

2.4 कालविभाजन के आधार

2.5 नामकरण एवं सीमांकन

2.6 सारांश

2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

2.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

2.9 अभ्यास प्रश्न

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को अध्ययन करने के बाद आप –

- हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन तथा नामकरण की आवश्यकता को जानेंगे।
- काल विभाजन और नामकरण के संदर्भ में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों से परिचित होंगे।
- हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण के आधार को जान पाएंगे।
- हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण संबंधी विवादों से परिचय प्राप्त करेंगे।

2. 2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। लगभग हजार वर्षों की इस इतिहास के अध्ययन, मनन के सुविधा हेतु इतिहासकारों ने साहित्यिक विशेषताओं के आधार पर हिंदी साहित्य के इतिहास को भिन्न-भिन्न कालखंडों में विभाजित किया हैं तथा इसी तरह इसका नामकरण भी किया है। वर्तमान समय में हिंदी साहित्य का स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट है। इस स्पष्टता का मुख्य कारण इतिहास का काल विभाजन और नामकरण ही है। साहित्य रचना की समय सीमा तथा साहित्यिक विशेषताओं के आधार पर इतिहासकार इसका नामकरण किया है।

2.3 हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज और युग की प्रवृत्तियाँ साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रतिबिंबित होती हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करके भिन्न योगों के साहित्य और उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन सुविधा पूर्वक कर सकते हैं। काल विभाजन से साहित्य के इतिहास को देश काल और समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर समझने में सहायक होता है। काल विभाजन की दृष्टि से हिंदी का सर्वप्रथम इतिहास जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' नाम से 1886 में लिखा था। हिंदी साहित्य का व्यवस्थित काल विभाजन सर्वप्रथम आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कृति 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में मिलता है। शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालखंडों में विभाजित किया है-

1. आदिकाल (वीरगाथा काल संवत् - 1050 से 1375 तक)
2. भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल संवत् - 1375 से 1700 तक)
3. रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल संवत् - 1700 से 1900 तक)
4. आधुनिककाल (गद्य काल संवत् - 1900 से अब तक)

2.4 काल विभाजन के आधार

साहित्य इतिहास के काल विभाजन के कुछ प्रमुख आधार होते हैं, जिसके द्वारा रचनाओं में निहित गुणों की खोज होता है। इन आधारों में से प्रमुख हैं- ऐतिहासिक कालक्रम के आधार (आदिकाल, मध्यकाल, संक्रान्तिकाल, आधुनिककाल आदि), साहित्यिक प्रवृत्ति का आधार (रोमानीयुग, रीतिकाल, छायावाद आदि) और क्राष्ट्रीय, सामाजिक- सांस्कृतिक परिघटना का आधार (भक्तिकाल, पुनर्जागरणकाल, सुधारकाल, युद्धोत्तरकाल आदि), शासक और उनके शासनकाल के आधार पर (एलिजाबेथ युग, विक्टोरिया युग, मराठाकाल आदि) इतिहास का काल विभाजन किया जाता है।

2.5 नामकरण एवं सीमांकन

हिंदी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल नाम दिया गया। आदिकाल की सीमा एवं नामकरण को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। हिंदी भाषा के उद्भव और विकास पर दृष्टिपात करने के पश्चात यह तो स्पष्ट है कि अपभ्रंश हिंदी से पूर्व प्रचलित भाषा थी तथा चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसे ही पुरानी हिंदी कहा है। जब अपभ्रंश भाषा हिंदी के रूप में विकसित हो गई उस समय जो रचनाएँ लिखी गई वहीं से हिंदी साहित्य के आरंभिक काल की शुरूआत मानी जा सकती है। आचार्य शुक्ल ने आदिकाल की समय सीमा संवत् 1050 से संवत् 1375 तक मानी है।

किसी भी विषय के इतिहास को समझने के लिए उसका काल विभाजन अत्यंत अनिवार्य होता है। काल विभाजन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का सुगमता से अध्ययन किया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास इसीलिए सर्वमान्य है, क्योंकि उसमें विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार काल विभाजन किया गया है और प्रत्येक काल को एक निश्चित सीमा के अंदर रखा गया है। शुक्ल द्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया गया हैं- आदिकाल (संवत् 1050 से 1375) भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) रीतिकाल (संवत् 1700-1900) आधुनिक काल (संवत् 1900 से अब तक)



महत्वपूर्ण बिंदु

- काल विभाजन की दृष्टि से हिंदी का सर्वप्रथम इतिहास जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' नाम से सन् 1886 में लिखा था।
- हिंदी साहित्य का व्यवस्थित काल विभाजन सर्वप्रथम आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कृति 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929) में मिलता है।

काल विभाजन की दृष्टि से मिश्रबंधुओं का 'मिश्रबंधु विनोद' एक महत्वपूर्ण साहित्य इतिहास है। काल विभाजन की दृष्टि से मिश्रबंधुओं ने सर्वाधिक परिश्रम कवियों का समय निर्धारण में किया है। उनका काल विभाजन इस प्रकार हैं- पूर्व प्रारंभिक हिंदी (संवत् 700-1343), उत्तर प्रारंभिक हिंदी (संवत् 1343-1444), पूर्व माध्यमिक हिंदी (संवत् 1445-1560), पौढ़ माध्यमिक हिंदी (संवत् 1561-1680), पुर्वालंकृत प्रकरण (संवत् 1681-1790), उत्तरालंकृत प्रकरण (संवत् 1791-1889), अज्ञात काल (अकारादिक्रम से वर्णित), परिवर्तनकाल (संवत् 1890-1925) और वार्यमाण काल (संवत् 1926 से अबतक)। इस विभाजन का प्रमुख आधार भाषा का विकासक्रम था।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने हिंदी साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया है; आदिकाल-बाल्यावस्था (संवत् 1000-1400), मध्यकाल-किशोरावस्था (संवत् 1400-1800) और आधुनिक काल-युवावस्था (संवत् 1800 से अबतक)।।

हिंदी साहित्य के लेखकों एवं साहित्यिक विचारकों के अनुसार हिंदी साहित्य का नामकरण एवं सीमांकन इस प्रकार है-

प्रथम इतिहास लेखक गार्सा द तासी तथा शिव सिंह सेंगर द्वारा काल विभाजन एवं नामकरण की प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया। सर्वप्रथम काल विभाजन का कार्य डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा किया गया। उसके बाद के लगभग सभी साहित्य इतिहास लेखकों ने इस प्रक्रिया को अपनाया। आदिकाल को लेकर विभिन्न विचारकों ने निम्नलिखित मत दिए हैं-

क) चारण काल (जॉर्ज ग्रियर्सन) : डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के आदिकाल को चारण काल का नाम दिया तथा इसका समय 643 ई. से माना है। परंतु उनका यह नामकरण और

समय सीमा स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इस समय किसी प्रकार की चारण रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती।

ख) प्रारंभिक या आरंभिक काल (मिश्र बंधु) : मिश्र बंधुओं ने आदिकाल को प्रारंभिक या आरंभिक काल की संज्ञा दी तथा उन्होंने इसकी समय सीमा 643 ई. से 1387 ई. तक स्वीकार की है। इनके नामकरण का आधार यह है कि यह हिंदी साहित्य का आरंभिक काल है। उनकी इस प्रस्तावना के पीछे कोई विशेष तर्क नहीं था। अत: इस सामान्य प्रवृत्ति के आधार पर किए गए इस नामकरण को भी स्वीकार्यता नहीं मिली।

ग) वीरगाथा काल (आचार्य रामचंद्र शुक्ल) : आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को वीरगाथा काल नाम दिया तथा इसकी समय सीमा संवत् 1050 (सन् 993 ई.) से संवत् 1375 (सन् 1318 ई.) स्वीकार की। शुक्ल ने महाराजा भोज से लेकर हम्मीर देव के समय से कुछ पीछे तक के समय को आदिकाल में रखा है। उन्होंने इस नामकरण के पीछे यह तर्क स्थापित किया कि इस समय दरबारी साहित्य का समय था। प्रत्येक राजा महाराजा के दरबार में आश्रय प्राप्त कवियों ने अपने आश्रय दाताओं की पराक्रम पूर्ण गाथाओं तथा चरित्रों का वर्णन किया है। वीर रस से पूर्ण इन रचनाओं को रासो साहित्य का नाम दिया जाता है। शुक्ल ने जिन रचनाओं के आधार पर इस काल का नामकरण किया उन 12 रचनाओं का परिचय इस प्रकार है-

1. विजयपाल रासो (नल्लसिंह कृत-सं.1355)
2. हम्मीर रासो (शांगधर कृत-सं.1357)
3. कीर्तिलता (विद्यापति-सं.1460)
4. कीर्तिपताका (विद्यापति-सं.1460)
5. खुमाण रासो (दलपतिविजय-सं.1180)
6. बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह-सं.1212)
7. पृथ्वीराज रासो (चंद बरदाई-सं.1225-1249)
8. जयचंद्र प्रकाश (भट्ट केदार-सं. 1225)
9. जयमयंक जस चंद्रिका (मधुकर कवि-सं.1240)
10. परमाल रासो (जगनिक कवि-सं.1230)
11. खुसरो की पहेलियाँ (अमीर खुसरो-सं.1350)
12. विद्यापति की पदावली (विद्यापति-सं.1460)



महत्वपूर्ण बिंदु

- अपभ्रंश हिंदी से पूर्व प्रचलित भाषा थी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसे ही पुरानी हिंदी कहा है।

आचार्य शुक्ल के इस मत का मोतीलाल मेनारिया और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने विरोध किया। आचार्य द्विवेदी ने शुक्ल द्वारा दिए गए ग्रंथों को अप्रमाणिक सिद्ध किया तथा यह मत भी स्थापित किया कि इस समय केवल वीरता पूर्ण ही नहीं बल्कि धार्मिक एवं अन्य प्रवृत्तियों से संबंधित रचनाएँ भी लिखी गई है, जो साहित्य में अपनी विशेष भूमिका रखती हैं। अत: वीरगाथा काल नाम भी पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया गया, परंतु इसकी समय सीमा सर्वमान्य हो गई।

घ) **सिद्ध सामंत काल (राहुल सांकृत्यायन) :** आदिकाल का नामकरण करने वाले विद्वानों में राहुल सांकृत्यायन का नाम भी प्रसिद्ध है। उन्होंने इस काल को सिद्ध सामंत काल कहा है तथा 8वीं से 13वीं शताब्दी तक इसकी समय सीमा स्वीकार की है। इस नामकरण के पीछे उन्होंने यह तर्क दिया कि इस युग में मुख्यत: दो तरह की प्रवृतियां शामिल थीं- सिद्धों की रचनाएँ तथा सामंतों की स्तुति अर्थात बौद्ध धर्म के अनुयायी सिद्ध इसमें अपनी रचनाओं का प्रचार-प्रसार कर रहे थे तो वहीं दूसरी ओर राज्य आश्रित कवि अपने आश्रयदाता सामंतों की प्रशंसा एवं स्तुति परक रचनाएँ रच रहे थे। विद्वानों द्वारा इस नाम को भी मान्यता नहीं दी गई।

ङ) **बीजवपन काल (महावीर प्रसाद द्विवेदी):** महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को बीजवपन काल की संज्ञा दी। उनका मानना था कि इस काल में हिंदी की साहित्यिक रचनाओं का बीज बोया जा रहा था। परंतु यह नाम भी मान्य नहीं हुआ क्योंकि इस काल में अनेक प्रौढ़ रचनाएँ भी लिखी गई है।

च) **संधि एवं चारण काल (डॉ. रामकुमार वर्मा):** रामकुमार वर्मा ने अपने साहित्य इतिहास में आदिकाल को दो भागों में विभाजित किया संधि एवं चारण काल। इस नामकरण के पीछे उन्होंने तर्क दिया कि एक तो यह युग हिंदी और अपभ्रंश की संधि का युग है, दूसरे इस युग के सभी कवि दरबारी कवि है, जो अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा में रचनाएँ कर रहे थे। यह कवि चारण कवि है, इसीलिए यह युग चारण काल है। विद्वानों द्वारा इस नाम को भी स्वीकार नहीं किया गया।

छ) **अपभ्रंश काल (चंद्रधर शर्मा गुलेरी):** गुलेरी ने भाषा के आधार पर इस काल को अपभ्रंश काल नाम दिया। परंतु भाषागत प्रवृत्ति के कारण किसी युग का नामकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें अन्य प्रवृतियां भी शामिल होती है। अत: इस तर्क को भी मान्यता नहीं मिली।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता पर विचार कीजिए।

प्रश्न 2. हिंदी साहित्य के प्रथम काल को 'आदिकाल' क्यों कहा जाता है? सतर्क उत्तर दीजिए।

ज) **आदिकाल (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) :** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सभी प्रवृत्तियों का समाहार करते हुए इस काल को आदि काल की संज्ञा दी तथा इसकी समय सीमा संवत् 1000 से संवत् 1400 तक स्वीकार की। उन्होंने इस नामकरण के पीछे यह तर्क दिया कि आदिकाल प्रारंभ का सूचक ना होकर परंपरा के विकास का सूचक है तथा इसमें वीरता पूर्ण, धार्मिक, सांस्कृतिक, श्रृंगारिक, भक्ति परक तथा मनोरंजनात्मक कृतियों का भी समावेश है। विभिन्न दृष्टियों से यह काल परंपरा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त एवं सचेत कवियों का काल है। इस नाम में हिंदी के विभिन्न काव्य रूपों तथा भाषा के विकसित होने दोनों ही बातें शामिल हो जाती है। अत: हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस नामकरण को सभी ने मान्यता दी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के इतिहास का नामकरण और सीमाएं एक विवादास्पद विषय है, लेकिन विद्वानों द्वारा स्वीकृत प्रामाणिक नाम और सीमांकन निम्न प्रकार हैं–

आदिकाल – संवत् 1050 से 1375

भक्तिकाल – संवत् 1375 से 1700

रीतिकाल – संवत् 1700 से 1900

आधुनिककाल – संवत् 1900 से अबतक।



2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता के बारे में समझ गए होंगे। काल विभाजन तथा नामकरण से संबंधित कठिनाइयां एवं विवादों के बारे में भी इस इकाई में सविस्तार वर्णन किया गया है। यह नामकरण साहित्यिक रचनाओं के आधार पर किया गया है।



2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : वर्तमान समय में हिंदी साहित्य का स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट है। इस स्पष्टता का मुख्य कारण इतिहास का काल विभाजन और नामकरण ही है।

अधिक जानकारी के लिए ऊपर दिए गये '**नामकरण एवं सीमांकन**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल

कहा है। उन्होंने इस नामकरण के पीछे यह तर्क दिया कि आदिकाल प्रारंभ का सूचक ना होकर परंपरा के विकास का सूचक है तथा इसमें वीरता पूर्ण, धार्मिक, सांस्कृतिक, श्रृंगारिक, भक्ति परक तथा मनोरंजनात्मक कृतियों का भी समावेश है।

अधिक जानकारी के लिए ऊपर दिए गये '**नामकरण एवं सीमांकन**' को ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।



2.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



2.9 अभ्यास प्रश्न

(क)संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार आदिकाल की समय-सीमा क्या है?
2. किसने आदिकाल को चारण काल कहा है?
3. टिपण्णी लिखिए-

   क) वीरगाथा काल ख) सिद्ध सामंत काल

(ख)निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण को सविस्तार स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करते हुए बताइए कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण किस आधार पर किया है?
3. हिंदी साहित्य के काल विभाजन के प्रमुख आधार पर प्रकाश डालिए।
4. हिंदी साहित्य के काल विभाजन के औचित्य पर विचार कीजिए।
5. हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के नामकरण की समस्या का विस्तार से विवेचन कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 3 : आदिकाल

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 पृष्ठभूमि

- 3.3.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि
- 3.3.2 सामाजिक पृष्ठभूमि
- 3.3.3 धार्मिक पृष्ठभूमि
- 3.3.4 आर्थिक पृष्ठभूमि
- 3.3.5 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
- 3.3.6 साहित्यिक पृष्ठभूमि
- 3.3.7 आदिकालीन लौकिक साहित्य

3.4 आदिकाल को किसने क्या नाम दिया

3.5 आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

3.6 आदिकालीन साहित्यिक उपलब्धियाँ

- 3.6.1 सिद्ध साहित्य
- 3.6.2 नाथ साहित्य
- 3.6.3 जैन साहित्य
- 3.6.4 लौकिक साहित्य
- 3.6.5 रासो साहित्य

3.7 आदिकाल का पहला कवि

3.8 सारांश

3.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

3.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

3.11 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- आदिकाल के स्वरूप एवं महत्व के बारे में जानेंगे।
- आदिकालीन विभिन्न परिस्थितियों से अवगत होंगे।
- आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करेंगे।

3.2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक काल को आदिकाल के नाम से संबोधित किया गया है। 'आदि' शब्द 'प्रारंभ' या 'शुरूआत' अर्थ का द्योतक है अर्थात आदिकालीन साहित्य कहने से हिंदी साहित्य के इतिहास की प्रारंभिक रचनाओं के बारे में एक अवधारणा मन में बनती है। किसी भी साहित्य को समझने के लिए उसके पृष्ठभूमि को जानना अत्यंत आवश्यक है। 11वीं शताब्दी से लेकर 14 वीं शताब्दी तक जो साहित्य हिंदी प्रदेशों में उपलब्ध होता है, वह प्राय: सभी साहित्य आदिकालीन हिंदी साहित्य के अंतर्गत आते हैं।

3.3 पृष्ठभूमि

किसी भी युग के साहित्य को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को जानना अति आवश्यक होता है। प्रत्येक युग का साहित्य, उसके समाज, धर्म विचार, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह सभी परिस्थितियाँ साहित्यिक रचना का आधार बनती है। आदिकालीन साहित्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का वर्णन इस प्रकार हैं-

3.3.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

7वीं-8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक के राजनीतिक घटना चक्र ने हिंदी साहित्य को भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया। राजनीतिक दृष्टि से यह युग अराजकता और असंतुलन का युग है। सम्राट हर्षवर्धन ने सन 606 ई. में सिंहासन संभाला और अपनी योग्यता से अपने विरोधियों को वश में कर लिया। उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और उत्तर भारत के अधिकतर क्षेत्रों को एक सूत्र में बांधने में सफल हुए। हर्षवर्धन के शासनकाल में ही चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था और उसने उस समय के भारत के धर्म और समाज के व्यवस्थित होने का उल्लेख किया था। 647 ई. में हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत का साम्राज्य एक सूत्र में नहीं रहा और छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। विभिन्न राज्यों के राजा सत्ता की लालसा में एक दूसरे से युद्ध करने लगे। इन शासकों के युद्ध का अधिकांश कारण केवल शौर्य प्रदर्शन और पराक्रम दिखाना ही होता था। आपसी कलह और बढ़ते हुए विघटन ने सामंतवादी प्रथा को बल दिया तथा पश्चिम में मुसलमानों के आक्रमण भी हावी होने लगे। इस तरह की राजनीतिक परिस्थितियों में आदिकालीन साहित्य विकसित हो रहा था। शासकों की आपसी लड़ाई, मुगलों के आक्रमण, एकता का अभाव और राज्यों का बिखराव ही मान-अपमान के प्रश्न बने हुए थे। युद्ध ने देश को खोखला और जर्जर बना दिया था।

राजपूतों का उदय उस समय के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। उनके शौर्य और पराक्रम का वर्णन उस युग के साहित्य में हुआ है। मोहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान के इतिहास का विवरण पृथ्वीराज रासो में मिलता है। आदिकाल की राजनीतिक व्यवस्था में दो बातें प्रमुख थीं- केंद्रीय सत्ता का ह्रास और छोटे-छोटे राज्यों का उदय। अराजकता और युद्ध प्रभावित असंतुलित समय में उपजे साहित्यकारों में एक साहित्यकार आध्यात्मिक जीवन की ओर जा रहा था तो दूसरा मरते-मरते भी जीवन का आनंद लेना चाहता था। तीसरी श्रेणी का साहित्यकार वह था जो तलवार के गीत गाकर पराक्रम का जीवन जीना चाहता था। यही इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों की विचित्र देन थी।

3.3.2 सामाजिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक उथल-पुथल में सामाजिक व्यवस्था का विश्रृंखल हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। हिंदू राजाओं की आपसी कलह के कारण विदेशियों के भारत पर आक्रमण होने लगे। अनेक विदेशी जातियां हिंदू समाज में घुल मिल गई। राजपूतों के पास सत्ता होने से समाज में उनका दबदबा बढ़ता गया। ब्राह्मणों के वर्चस्व को थोड़ा खतरा महसूस हुआ, इसलिए उन्होंने वर्णवाद की कट्टरता को थोड़ा लचीला बनाकर राजपूत को क्षत्रिय की संज्ञा दी। इस युग में शिक्षा की व्यवस्था के अभाव में सांप्रदायिक तनाव, सती प्रथा, स्त्रियों की सूरक्षा के लिए पर्दा प्रथा तथा अन्य विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों का बोलबाला बढ़ता गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों की प्रधानता के साथ साथ समाज अनेक जातियों एवं उप जातियों में बंटकर भारतीय सामाजिक आदर्श खो बैठा। जाति-पाति के बंधन कड़े होते गए। निर्धनता और निरंतर होने वाले युद्ध तथा महामारियों ने सामान्य जनता के जीवन को संकट में डाल दिया था। इस तरह की विषम सामाजिक परिस्थितियां आदिकालीन साहित्यकारों की साहित्य सामग्री बनती गई। राजा के दरबारी होने के कारण आम जनता का कोई महत्व नहीं रह गया था, एक तरह से यह सामंतवादी व्यवस्था थी। नारी मात्र भोग का साधन रह गई थी। जिस तरह धन-संपत्ति के लिए यूद्ध किए जाते थे, उसी तरह अब एक सुंदर नारी युद्ध का कारण बनती जा रही थी। नारी की स्थिति के साथ-साथ राजा महाराजाओं की भोग विलासिता का भी इस युग के साहित्यकारों ने चित्रण किया है।

3.3.3 धार्मिक पृष्ठभूमि

सम्राट हर्षवर्धन के समय, ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का समान आदर था। यद्यपि हर्षवर्धन स्वयं बौद्ध धर्म को मानने वाले थे तथा उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार-

प्रसार भी किया परंतु उनमें एक प्रकार की उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी। उनके समय में विभिन्न धर्मों में आपसी मेलजोल था, परंतु जिस तरह हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद राजनीतिक स्थिति में उथल-पुथल हुआ उसी तरह धार्मिक स्थिति भी बदल गई। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया और धीरे-धीरे धर्म के क्षेत्र में अराजकता फैलती गई। वेद-शास्त्रों के विधि विधान और कर्मकांड को लेकर चलने वाले ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म में संघर्ष होने लगे। विभिन्न धार्मिक संप्रदाय बने और विकृत होकर नए रूपों में जनता के सामने आने लगे। परिणाम स्वरूप आम आदमी धर्म के वास्तविक आदर्श को भूलकर जादू- टोना और तंत्र-मंत्र में विश्वास करने लगा। धर्म के नाम पर बने संप्रदायों में अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और उनका प्रदर्शन की सिद्धि समझा जाने लगा। जहाँ बौद्ध धर्म महायान, हीनयान, वज्रयान, मंत्रयान आदि शाखाओं में बंट गया, वही हिंदू धर्म भी वैष्णव, शाक्त और शैव मतों में विभाजित हो गया। धर्म के नाम पर अधर्म का बोलबाला बढ़ता गया और मानव के नैतिक स्तर में गिरावट आई। धर्म के नाम पर केवल अंधविश्वास और आडंबरों का बोलबाला रहा और धार्मिक स्थल व्यभिचार और लोभ के क्रीड़ास्थल बन गए। हिंदू धर्म पूर्णत: पतन की ओर अग्रसर हो गया। आपसी कलह के कारण इस्लाम धर्म का प्रवेश भी इस युग की बड़ी घटना थी। सिद्ध, नाथ और जैन धर्म के अनुयायियों ने अपने-अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए साहित्यिक रचनाएँ रची। खंडन-मंडन हठयोग और श्रृंगारपरक रचनाएँ इस युग के धार्मिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य जैसे विद्वानों के विचारों ने जनजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। कुल मिलाकर कहा जाए तो इस युग की धार्मिक परिस्थितियां भी अव्यवस्थित एवं प्रतिकूल थी।

3.3.4 आर्थिक पृष्ठभूमि

इस युग की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। किसानों की पैदावार से ही हर छोटे-बड़े राज्य का पोषण होता था। राज्य के उच्च पदाधिकारियों और सरदारों को नगद वेतन नहीं मिलता था, अभी तो इन्हें जागीर दी जाती थी। इस समय समाज दो वर्गों में बांटा हुआ था- उत्पादक और उपभोक्ता। उत्पादक वर्ग को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि वह श्रम करते थे, उपभोक्ता वर्ग सुख से रहता था, इसलिए उनका संबंध उच्च वर्ग के साथ माना जाता था। कवि भी उच्च वर्गों के मनोनुकूल साहित्य की रचना करते थे। यही कारण है कि कृषक को साहित्य में कोई स्थान नहीं मिला। धार्मिक साहित्य में भी कृषक जीवन की पीड़ा और संकट को अभिव्यक्त नहीं किया गया है। आर्थिक गतिविधि के तौर पर व्यापार का ह्रास हो रहा था। व्यापार के पतन से नगर उजाड़ हो गए। भारत में उत्पादित वस्तुओं के लिए बाहर कहीं भी बाजार

नहीं रह गया था। नगरों के ह्रास से अखिल भारतीय संपर्क सूत्र कमजोर हो गया था। प्रगति से जिस संपर्क भाषा का विकास होता है, उस भाषा का विकास स्वाभाविकता से नहीं हो पाया और भाषा का स्वरूप भी स्थानीय हो गया।

3.3.5 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

इस समय भारत एक मिश्रित संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया में था। मिश्रित संस्कृति से अभिप्राय है कि अनेक धाराएं उसमें आकर मिली और मिलकर लय हो गई। भारतीय संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का संपर्क बढ़ रहा था। हर्षवर्धन के समय हिंदू धर्म और संस्कृति को एक राष्ट्रव्यापी एकता का आधार मिला था। उस समय छोटे-बड़े भेदभाव खत्म होकर नए विचारों से देशभक्ति हर एक के मन में पनपने लगी थी। संगीत, चित्र, मूर्ति, भवन निर्माण आदि कलाओं में जातीय गौरव सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा था। जब मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किया तो धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव हिंदू संस्कृति पर पड़ने लगा। संगीत, भवन निर्माण, वास्तु आदि सभी कलाओं में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव दिखाई देने लगा। इस तरह कहा जा सकता है कि आदिकाल की भारतीय संस्कृति उत्कृष्टता प्राप्त निजी परंपरा के ह्रास तथा इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है, जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत स्वरूप बहुत कम मिलता है।

3.3.6 साहित्यिक पृष्ठभूमि

इस समय की साहित्यिक पृष्ठभूमि में तत्कालीन समाज, राजनीति, धर्म और अर्थव्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। साहित्य में तीन धाराएं प्रचलित थीं-प्रथम संस्कृत भाषा की, दूसरी प्राकृत और अपभ्रंश की तथा तीसरी हिंदी भाषा की। 9वीं से 11वीं शताब्दी में कन्नौज और कश्मीर साहित्य रचना के केंद्र में रहे। इसी बीच वहीं आचार्य कवि नाटककार तथा गद्य लेखक सामने आए। इस समय अपभ्रंश धर्म की भाषा और हिंदी जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा थी। इस काल का साहित्य राजा, धर्म तथा लोक तीन हिस्सों में विभाजित हो गया था। राजा के साहित्य में वीरगाथात्मक रासो ग्रंथ शामिल है तो धार्मिक साहित्य में सिद्ध, नाथ और जैन मुनियों की रचनाएँ आती हैं। लौकिक साहित्य के अंतर्गत विद्यापति का श्रृंगारिक साहित्य एवं अमीर खुसरो का मंनोरंजनात्मक साहित्य रखा जाता है। इस तरह आदिकाल का साहित्य संपूर्णत: विविधताओं से भरा हुआ था।

3.4 आदिकाल को किसने क्या नाम दिया ?

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा आदिकाल के निम्न नाम दिए गए हैं-

(1) वीरगाथा काल	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
(2) आदिकाल	हजारी प्रसाद द्विवेदी जार्ज ग्रियर्सन
(3) चारणकाल	डॉ. रामकुमार वर्मा
(4) बीज वपन काल	महावीर प्रसाद द्विवेदी
(5) सिद्ध सामन्त युग	राहुल सांकृत्यायन
(6) आरम्भिक काल	मिश्र बन्धु
(7) प्रारम्भिक काल	डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
(8) वीरकाल	विश्वनाथ प्रताप मिश्र

3.5 आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

हिंदी साहित्य के सुदीर्घ इतिहास में आदिकाल की समय सीमा संवत् 1050 से 1375 तक मानी जाती हैं।

1. आदिकालीन काव्यों में युद्ध का सजीव वर्णन किया गया है, क्योंकि उस समय के कवि राजा के दरबारों में ही रहते थे और युद्ध के समय युद्ध में लड़ने भी जाते थे।
2. आदिकालीन साहित्य में ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं की गई है। उस समय की अधिकांशत: काव्यों के वर्णन इतिहास से मेल नहीं खाते हैं।
3. आदिकाल के समय छोटे-छोटे राज्य होते थे, सभी राजा और राज्य के लोग अपने राज्य की उन्नति के बारे में सोचते थे, अत: आदिकाल के समय राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था।
4. आदिकालीन साहित्य तथ्यपरक न होकर कल्पना प्रधान थे। ऐतिहासिक पात्र होने पर भी इन काव्यों में इतिहास नाम मात्र का है।
5. आदिकालीन साहित्य में श्रृंगार व वीर रस का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। उस समय होने वाले युद्धों से वीर रस का वर्णन व राजाओं द्वारा राजकन्याओं से होने वाले विवाह से श्रृंगार रस का वर्णन स्वाभाविक रूप से हुआ है।
6. आदिकालीन साहित्य में डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग, विशेषत: रासो साहित्य में हुआ है। अपभ्रंश व राजस्थानी भाषा के मिले-जुले रूप को डिंगल कहते हैं और अपभ्रंश व ब्रज भाषा के मिले जुले-रूप को पिंगल कहते हैं।
7. आदिकालीन साहित्य के रासो काव्यों में अलंकारों का प्रयोग पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं हुआ है, अपितु अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है।

3.6 आदिकालीन साहित्यिक उपलब्धियाँ

आदिकालीन साहित्य को तीन भागों में बाँटा गया हैं-

धार्मिक साहित्य	लौकिक साहित्य	रासो साहित्य
1. सिद्ध साहित्य	1. ढोला मारु रा दूहा	1. खुमाण रासो
2. नाथ सहित्य	2. वसंत विलास	2. बीसलदेव रासो
3. जैन साहित्य	3. राउल वेल	3. परमाल रासो
	4. उक्ति व्यक्ति प्रकरण	4. हम्मीर रासो
	5. वर्ण रत्नाकर	5. पृथ्वीराज रासो
	6. खुसरो का काव्य	6.विजयपाल रासो
	7. विद्यापति की पदावली	



महत्वपूर्ण बिंदु

- अपभ्रंश व राजस्थानी भाषा के मिले-जुले रूप को डिंगल कहते हैं।
- अपभ्रंश व ब्रज भाषा के मिले जुले-रूप को पिंगल कहते हैं।

3.6.1 सिद्ध साहित्य

भारतीय साधना के इतिहास में 8वीं शताब्दी में सिद्धों की सत्ता देखी जाती है। बौद्ध धर्म की महायान शाखा को वज्रयान भी कहते हैं। वज्रयानियों को ही सिद्ध कहा जाता है। वज्रयान तत्व के प्रचार के लिए जनभाषा में जिस साहित्य को लिखा गया वह सिद्ध साहित्य कहलाता है। सिद्धों की संख्या 84 मानी जाती है, जिनमें 23 सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। सिद्ध साहित्य की प्रमुख रचनाएँ-

रचना	रचनाकार
दोहाकोश	सरपहा
चर्यापद	शबरपा
डोम्बिगीतिका,योगचर्या,	
अक्षरद्विकोपदेश	डोम्भिपा

3.6.2 नाथ साहित्य

सिद्ध साहित्य में आई विकृतियों के विरोध में नाथ साहित्य का जन्म हुआ। नाथ में 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है- भुवनत्रय में स्थापित होना। नाथों

की साधना प्रणाली 'हठयोग' पर आधारित है। नाथों की संख्या नौ है- 1 . आदिनाथ (स्वयं शिव) 2. मत्स्यन्द्रनाथ (मछ्न्दरनाथ) 3. गोरखनाथ 4. गहिणीनाथ 5. चर्पटनाथ 6. चौरंगीनाथ 7. जालंधरनाथ 8. भर्तृनाथ (भरथरीनाथ) 9. गोपीचन्द नाथ।

गोरखनाथ नाथ साहित्य के आरम्भकर्ता माने जाते हैं। गोरखनाथ के द्वारा रचित 40 रचनाएँ मानी जाती हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं- सबदी, पद, प्राण संकली, सिवयादरसन, नरवैबोध, अभैमात्राजोग, सप्तवार, रोमावली आदि।

3.6.3 जैन साहित्य

आदिकाल की उपलब्ध सामग्री में जैन साहित्य के सर्वाधिक ग्रन्थ हैं। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी हैं। भारत के पश्चिम क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिन्दी कविता के माध्यम से किया। जैन कवियों ने आचार, रास, पाश, चरित, फागु आदि विभिन्न शैलियों में साहित्य लिखा। जैन साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रन्थ माने जाते हैं। रास एक तरह का गेयरुपक है। जैन मन्दिरों में रात्रि के समय श्रावक लोग 'रास' का गायन करते थे। इस रास में तीर्थंकरों के जीवन चरित, वैष्णव अवतारों की कथाएँ और जैन आदर्शों का प्रतिपादन होता था। आगे चलकर रास काव्य एक ऐसे काव्य के रूप में निश्चित हो गए जो गेय हो। हिन्दी में रास काव्य का प्रवर्तन शालिभद्र सूरि द्वारा लिखित भरतेश्वर बाहुबली 'रास' से माना जाता है।

जैन साहित्य की प्रमुख रचनाएँ-

रचना	रचनाकार
1. भरतेश्वर बाहुबली रास	शालिभद्र सूरि
2. बुद्धि रास	शालिभद्र सूरि
3. स्थूलिभद्र रास	जिनि धर्म सूरि
4. जीव दया रास	आसगु
5. जिनि पद्म सूरि रास	सारमूर्ति
6. गौतम स्वामी रास	उदयवन्त
7. पंच पाण्डव चरित रास	शालिभद्र सूरि
8. श्रावकाचार	देवसेन
9. चन्दनबाला रास	आसगु
10. रेवन्तगिरि रास	विजयसेन सूरि
11. नेमिनाथ रास	सुमति गणि



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. सिद्ध साहित्य पर टिपण्णी लिखिए।

प्रश्न 2. आदिकालीन लौकिक साहित्य पर अपना विचार व्यक्त कीजिए।

3.6.4 लौकिक साहित्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में नाथ, सिद्ध एवं जैन साहित्य धर्माश्रित होने के कारण तथा रासो साहित्य राजाश्रित होने के कारण सूरक्षित रह गया। परंतु इस काल में इन दोनों काव्य धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई, लेकिन वह लोकाश्रित होने से सूरक्षित न रह सकी। अनेक कारणों से वह साहित्य लुप्त हो गया। विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से लोक में जो थोड़ा-बहुत शेष रह गया, उससे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लौकिक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। उपलब्ध लोक साहित्य में 'ढोला मारू रा दूहा', 'बीसलदेव रासो', 'वसन्त विलास', 'राउलवेल', 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', 'वर्ण रत्नाकर', 'अमीर खुसरो की रचनाएँ' तथा 'विद्यापति की पदावली' को देखकर तत्कालीन लोक साहित्य के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

3.6.5 रासो काव्य

रासो साहित्य मूलत: सामंती-व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है, जिसे 'देशीभाषा काव्य' के नाम से भी जाना जाता है। इस साहित्य के रचनाकार हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहनेवाले चारण या भाट थे। समाज में उनका स्थान और सम्मान था, क्योंकि उनका जुड़ाव सीधे राजा से होता था। ये चारण या भाट कलापारखी और कलारचना में निपुण होते थे। ये कुशलता से युद्ध करना भी जानते थे और युद्ध शुरू होने पर अपनी सेना की अगुवाई विरुदावली गा-गाकर किया करते थे। ये राजाओं, आश्रयदाताओं, वीर पुरुषों तथा सैनिकों के वीरोचित युद्ध घटनाओं को केवल बढ़ा चढ़ाकर ही नहीं, उसकी यथार्थपरक स्थितियों एवं सन्दर्भों को भी बारीकी के साथ चित्रित करते थे। वीरोचित भावनाओं के वर्णन के लिए इन्होंने रासक या रासो छन्द का प्रयोग किया था। रासो साहित्य की प्रमुख रचनाकार और उनके रचनाएँ इस प्रकार हैं-

1. खुमाण रासो-दलपति विजय
2. परमाल रासो-जगनिक
3. हम्मीर रासो-शारंगधर

4. विजयपाल रासो–नल्हसिंह
5. बीसलदेव रासो– नरपति नाल्ह
6. पृथ्वीराज रासो–चंदबरदाई



महत्वपूर्ण बिंदु

- रासो साहित्य को 'देशीभाषा काव्य' भी कहा जाता है।

3.7 आदिकाल का पहला कवि

राहुल सांकृत्यायन ने 7वीं शताब्दी के कवि सरहपाद को हिन्दी का पहला कवि माना है।

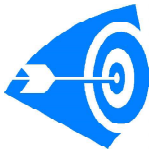
डॉ. शिवसिंह सेंगर ने 7वीं शताब्दी के पुष्य या पुण्ड नामक कवि को हिन्दी का प्रथम कवि माना है।

डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त शालिभद्र सूरि को हिन्दी का प्रथम कवि मानते हैं। इनकी रचना भरतेश्वर बाहुबली रास है।



3.8 सारांश

पहले की इकाई में आपने आदिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण के आधार, वर्गीकरण, उपलब्धियां आदि के बारे में अध्ययन किया। इस इकाई में हमने आदिकालीन भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के बारे में अध्ययन करने के साथ-साथ आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण के बारे में भी अध्ययन किया।



3.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : भारतीय साधना के इतिहास में 8वीं शताब्दी में सिद्धों की सत्ता देखी जाती है। बौद्ध धर्म की महायान शाखा को वज्रयान भी कहते हैं। वज्रयानियों को ही सिद्ध कहा जाता है।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए '**सिद्ध साहित्य**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

प्रश्न 2 का उत्तर : विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से लोक में जो थोड़ा-बहुत शेष रह गया उससे

इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लौकिक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। अधिक जानने के लिए देखें '**लौकिक साहित्य**'।



3.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का आदिकाल- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।



3.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. राहुल सांकृत्यायन ने किसको हिंदी का पहला कवि स्वीकार किया है?
2. रासो काव्य का दूसरा नाम क्या है?
3. आदिकालीन साहित्य की किन्हीं दो प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. आदिकालीन हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर चर्चा कीजिए।
2. आदिकाल के नामकरण विषयक विविध मतों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. आदिकाल के नामकरण की समस्या का विवेचन कीजिए।
4. सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
5. नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. जैन साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 4 : आदिकालीन रासो साहित्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 'रास' और 'रासो' से तात्पर्य

4.4 'रासो शब्द की व्युत्पत्ति

4.5 प्रमुख रासो ग्रन्थ और उनके रचयिता का परिचय

4.5.1 खुमान रासो

4.5.2 बीसलदेव रासो

4.5.3 हम्मीर रासो

4.5.4 परमाल रासो

4.5.5 पृथ्वीराज रासो

4.5.6 विजयपाल रासो

4.6 सारांश

4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

4.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- हिन्दी के आदिकालीन रासो साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे।
- रास, रासक या रासो के स्वरूप से परिचित होंगे।
- रासो ग्रन्थों की विशेषताओं और प्रमुख रासो ग्रन्थों के बारे में जानेंगे ।

4. 2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल में काव्य की विभिन्न परम्पराएँ विकसित हुई। हिंदी साहित्य में रासो काव्य परंपरा भी उनमें से एक अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य परम्परा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रासो ग्रंथों के आधार पर ही हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को वीरगाथा काल नाम दिया था।

4.3 'रास' और 'रासो' से तात्पर्य

'रास' शब्द का तात्पर्य संस्कृत के साहित्य में क्रीड़ा और नृत्य से संबंधित माना जाता है। जिसे भरतमुनि ने क्रीड़ानियक कहा है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के रचनाकाल तक इसमें गायन भी समावेश हो गया। लोक जीवन में भी श्रीकृष्ण की लीलाओं के लिए 'रास' शब्द रूढ़ हो गया था और आज भी सामान्य जनता उसी अर्थ में इसका प्रयोग करती है। जैन साधुओं ने 'रास' को एक प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल दे कर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अत: जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीरगाथाओं में रास को ही 'रासो' कहा गया, लेकिन विषय-भूमि जैन रासग्रंथों से अलग हो गया।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में रचित जैन 'रासकाव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो काव्य से भिन्न है। जैन रासो काव्य में धार्मिक दृष्टि प्रधान होने की वजह से वर्णन की वह पद्धतियाँ प्रयुक्त नहीं हुई, जो वीर गाथापरक रासो-ग्रंथों में मिलती है। रासो काव्य का मूल संबंध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है। इसी कारण इनका आकार रचनाकारों की मृत्यु के पश्चात भी बढ़ता रहा।

रासो साहित्य मूलत: सामंती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा साहित्य है, जिसका संबंध पश्चिमी हिंदी प्रदेश से है। इसे देशभाषा काव्य के नाम से भी जाना जाता है। इस साहित्य के रचनाकार हिंदू राजपूत राजाओं के आश्रय में रहने वाले चारण या भाट कवि थे। समाज में उनका सम्मान था क्योंकि उनका जुड़ाव सीधे राजा से होता था। आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ असंतुलित व अव्यवस्थित थी। हर्षवर्धन के शक्तिशाली राज्य की समाप्ति के पश्चात केंद्रीकृत शक्तियों का अभाव हो गया। पश्चिमी भारत में गहरवाल, चौहान, चंदेल, परिहार आदि राज्यों की स्थापना हुई। यह राज्य आपसी प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या रखते थे। पूरा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया था और इन राज्यों के राजा एक दूसरे के साथ युद्धरत रहते थे। आपसी लड़ाई और मुसलमानों के आक्रमण से देश आक्रांत था। ऐसे समय में राजाओं के आश्रित कवि इस तरह की रचनाएँ लिख रहे थे, जो युद्धक्षेत्र में अपने राजा, आश्रय दाता, वीर पुरुषों तथा सैनिकों के मनोबल को बढ़ाएं और उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करते रहे। आदिकाल के इन चारण भाट कवियों ने न केवल वीरतापूर्ण युद्ध घटनाओं का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया बल्कि अपने आश्रयदाता वीर सैनिकों की वीरता का भी ओजपूर्ण वर्णन किया है। इन कवियों ने युद्ध की यथास्थितियों का भी बारीकी से चित्रण किया है, क्योंकि ये स्वयं युद्धभूमि में राजा के साथ रहते थे। यही वीरतापूर्ण रचनाएँ रासो ग्रंथों के नाम से प्रसिद्ध हुई।

4.4 रासो शब्द की व्युत्पत्ति

रासो शब्द को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने 'रासों' की व्युत्पत्ति 'रहस्य' शब्द के 'रसह' या 'रहस्य' के प्राकृत रूप से मानी है।

श्री रामनारायण दूगड़ लिखते हैं- "रासो शब्द 'रहस' या रहस्य का प्राकृत रूप मालूम पड़ता है। इसका अर्थ गुप्त बात या भेद है, जैसे कि शिव रहस्य, देवी रहस्य आदि ग्रंथों के नाम हैं, वैसे शुद्ध नाम पृथ्वीराज रहस्य है जो कि प्राकृत में पृथ्वीराज रास, रासा या रासो हो गया।"

काशी प्रसाद जायसवाल और कविराज श्यामदास के अनुसार 'रहस्य' पद का प्राकृत रूप 'रहस्सो' बनता है, जिसका कालान्तर में उच्चारण भेद से बिगड़ता हुआ रूपांतर रासो बन गया है। रहस्य, रहस्सो, रअस्सो, रासो इसका विकास क्रम है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रासो' की व्युत्पत्ति 'रसायण' से मानते हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी 'रासक शब्द से रासो' का उद्भव मानते हैं। बीसलदेव में 'रास' और 'रासायण' शब्द का प्रयोग काव्य के लिए हुआ है। 'नाल्ह रसायन आरंभई' एवं रास रसायण सुणै सब कोई आदि। रस को उत्पन्न करने वाला काव्य रसायन है। बीसलदेव रासो में प्रयुक्त 'रसायन' एवं 'रसिय' शब्दों से 'रासो' शब्द बना है।

डॉ. ग्रियर्सन 'रासो का रूप रासा अथवा रासो मानते हैं तथा उसकी निष्पत्ति 'राजादेश' से हुई बताते हैं। इनके अनुसार- "इस रासो शब्द की निष्पत्ति 'राजादेश' से हुई है, क्योंकि आदेश का रूपान्तर आयसु है।"

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा हिन्दी के रासा शब्द को संस्कृत के रास शब्द से अनुस्यूत कहते हैं। उनके अनुसार- "मैं रासा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के रास शब्द से मानता हूँ। रास शब्द का अर्थ विलास भी होता है (शब्द कल्पदुम चतुर्थ काण्ड) और विलास शब्द चरित, इतिहास आदि के अर्थ में प्रचलित है।"

डॉ. दशरथ शर्मा एवं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'रास' परम्परा की गीत नृत्य परक रचनाएँ ही आगे चलकर वीर रस के पद्यात्मक इति वृत्तों में परिणत हो गई। 'रासो' प्रधानत: गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमश: विकसित होते-होते उपरूपक और उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों में परिणत हो गया। इस गेय नाट्यों का गीत भाग कालान्तर में क्रमश: स्वतन्त्र श्रव्य अथवा पाठ्य काव्य हो गया और इनके चरित नायकों के अनुसार इसमें युद्ध वर्णन का समावेश हुआ।

इन अभिमतों के विश्लेषण का निष्कर्ष रासो शब्द 'रास' का विकास है।

4.5 प्रमुख रासो ग्रन्थ और उनके रचयिता का परिचय

आदिकाल में रचित कुछ प्रमुख रासो ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं-

4.5.1 खुमान रासो

यह 9वीं शती की रचना है। इसमें राजस्थान के चित्तौड़ नरेश खुमान के युद्धों का वर्णन किया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में उपलब्ध है, जिसमें कुल 5000 छंद है। इसके लेखक दलपति विजय है। इसमें समकालीन राजाओं के आपसी विवाद के बाद हुई एकता के साथ-साथ अब्बासिया राजा खुमाण खलीफा तथा खुमान द्वितीय के साथ हुए युद्ध का चित्रण है। इस ग्रंथ की दो विशेषताएं हैं- एक युद्ध वर्णन और दूसरी प्रेम वर्णन। इसमें कवि ने नायिका भेद के साथ-साथ षट्ऋतु वर्णन का भी उल्लेख किया है जो अत्यधिक रमणीय है। वीर और श्रृंगार रस के साथ इसमें दोहा, सवैया और कवित्त छंद का प्रयोग किया गया है तथा इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है।

4.5.2 बीसलदेव रासो

इस रासो ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह ने 1155 ई. में किया था, जो अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के समकालीन थे। 2,000 चरणों में रचित इस रचना के चार खंड है। प्रथम खंड में बीसलदेव और मालव के राजा के परमार की पुत्री राजमती के विवाह का वर्णन किया गया है। दूसरे खंड में बीसलदेव का रानी से रूठकर उड़ीसा जाने का तथा 12 वर्षों तक वहीं रहने का वर्णन मिलता है। बीसलदेव अहंकार में जब यह कहता है कि मेरे जैसा राजा इस धरा पर दूसरा नहीं है तो राजमती को यह अहंकार पसंद नहीं आता और वह राजा से कहती है ऐसा नहीं है उड़ीसा का राजा भी बहुत वैभवशाली और शक्तिमान है। यह सुनकर राजा क्रोधित हो जाता है और उड़ीसा के लिए निकल पड़ता है। इसके तीसरे खंड में राजमती के विरह वर्णन का तथा बीसलदेव के उड़ीसा से लौटने का वर्णन मिलता है। राजमती का 12 वर्षों तक राजा के विरह में जीवन व्यतीत करना अत्यंत मार्मिक है। कवि ने इस विरह वर्णन के लिए बारहमासा पद्धति का प्रयोग किया है। राजमती की विकलता, चिंता, उद्वेग, दुख को कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके चौथे खंड में राजा द्वारा राजमती को चित्तौड़ लाने और अंततः साथ में रहने का प्रसंग वर्णित है। यह पूर्ण रूप से वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। यह प्रेम प्रधान रासक काव्य है, जिसमें मिलन की कम और विरह की संवेदनाएं अधिक है। एक तरह से यह संदेश काव्य है, जो संगीतबद्ध किया जा सकता है।

4.5.3 हम्मीर रासो

इस काव्य की प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हो पाई है। प्राकृत पैंगलम में

हमीर नरेश से संबंधित कुल आठ छंद मिले हैं, जिनके आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हम्मीर रासो नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ की उद्भावना की तथा इसके रचयिता कवि शार्ङ्गधर को माना है। लेकिन माता प्रसाद गुप्त और राहुल सांकृत्यायन ने हम्मीर रासो की रचयिता जज्जल को माना है। 13वीं शती में रचित इस रचना में हम्मीर और अलाउद्दीन के बीच हुए युद्ध का वर्णन मिलता है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. आदिकालीन रासो काव्य पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न 2. पृथ्वीराज रासो पर टिप्पणी लिखिए ।

4.5.4 परमाल रासो

परमाल रासो को उत्तरप्रदेश में आल्हखंड के नाम से भी जाना जाता है। सर्वप्रथम सन् 1865 ईसवीं में चार्ल्स इलियट ने आल्हखंड का प्रकाशन करवाया। यह काव्य पूर्ण रूप से मौखिक परंपरा पर आधारित है। इसी प्रति को आधार बनाकर डॉ. श्यामसुंदर दास ने परमाल रासो का पाठ निर्धारित किया तथा काशी नागरी प्रचारिणी से इसका प्रकाशन करवाया। यह तेरहवीं शताब्दी की रचना है। इसके रचनाकार जगनिक है, जो महोबा के नरेश पर परमर्दिदेव (परमाल) के आश्रित थे। इस काव्य में महोबा के देश प्रसिद्ध वीरों आल्हा और उदल की वीर गाथाओं का यथार्थ ढंग से वर्णन किया गया है। इसमें आल्हा छंद या वीर छंद का प्रयोग किया गया है। यह गाथा संपूर्ण उत्तर प्रदेश में गाई जाती है, परंतु इसका मुख्य केंद्र बैसवाड़ा है। इसका निम्नलिखित वीरगाथात्मक उदाहरण सर्वप्रसिद्ध है-

"बारह बरस लौ कूकर जिवै, तेरह लौ जियै सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जिवै, आगे जीवन कौ धिक्कार।"

4.5.5 पृथ्वीराज रासो

रासो काव्य परंपरा में 'पृथ्वीराज रासो' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके रचयिता चंदबरदाई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस ग्रंथ को हिंदी का प्रथम महाकाव्य एवं चंदबरदाई को प्रथम महाकवि की संज्ञा दी है। पृथ्वीराज रासो में दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र के साथ-साथ, सामन्ती वीर-युग की सभ्यता, रहन-सहन, मान-मर्यादा, ख़ान-पान तथा अन्य जीवन-विधियों का सुन्दर तरीके से वर्णन किया गया है। चंदबरदाई पृथ्वीराज के राजकवि के साथ-साथ उनके सखा और सामंत थे। विद्वानों ने पृथ्वीराज और चंदबरदाई के जन्म और मरण की तिथियाँ दोनों की एक ही स्वीकार की है। चंदबरदाई भाषा, व्याकरण,

काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, पुराण, नाटक आदि विधाओं में पारंगत थे। पृथ्वीराज रासो 2500 पृष्ठों का बृहद् ग्रंथ है, जिसमें 69 समय(सर्ग) है। पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली पर शासन करते हुए संयोगिता को अपनी रानी बनाया। शहाबुद्दीन गौरी के दिल्ली पर आक्रमण के समय पृथ्वीराज संयोगिता के मोह-पाश में बंधा था जिसके परिणामस्वरूप उसके गुरु, बांधव, भत्य तथा लोक में उसके प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया। प्रजा ने राजगुरु से कष्ट का निवेदन किया तो राजगुरु चंद को लेकर संयोगिता के आवास पर गया। दोनों ने मिलकर पृथ्वीराज को गोरी के आक्रमण की सूचिका पत्रिका भेजी और संदेशवाहिका दासी से कहला भेजा- "गोरी रत्ततुअधारा तू गोरी अनुरत्त"। राजा की विलासनिद्रा भंग हुई और वह संयोगिता से विदा होकर युद्ध के लिये निकाल पड़ा। शहाबुद्दीन इस बार बड़ी भारी सेना लेकर आया हुआ था। पृथ्वीराज के अनेक शूर योद्धा और सामंत कन्नोज युद्ध में ही मारे जा चुके थे। परिणामत: पृथ्वीराज की सेना रणक्षेत्र से लौट पड़ी और शाहबुद्दीन विजयी हुआ। पृथ्वीराज बंदी किया गया और गजनी ले जाया गया। जब चंद पृथ्वीराज के कष्टों का समाचार मिला, वह गजनी अपने मित्र तथा स्वामी के उद्धार के लिये अवधूत के वेष में चल पड़ा। अंत में पृथ्वीराज के शब्द भेदी बाण से शहाबुद्दीन के मारे जाने तथा पृथ्वीराज और चंदबरदाई के भी प्राणांत का भी चित्रण हुआ है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है - "पृथ्वीराज रासो ढाई हज़ार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसमें 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं। प्राचीन समय में प्रचलित प्राय: सभी छंदों का व्यवहार हुआ है। मुख्य छंद हैं कवित्त (छप्पय), दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या। जैसे कादंबरी के संबंध में प्रसिद्ध है कि उसका पिछला भाग बाण के पुत्र ने पूरा किया है, वैसे ही रासो के पिछले भाग का भी चंद के पुत्र जल्हण द्वारा पूर्ण किया गया माना जाता है। रासो के अनुसार जब शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तब कुछ दिनों पीछे चंद भी वहीं गए। जाते समय कवि ने अपने पुत्र जल्हण के हाथ में रासो की पुस्तक देकर उसे पूर्ण करने का संकेत किया। जल्हण के हाथ में रासो को सौंपे जाने और उसके पूरे किए जाने का उल्लेख रासो में है-'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।"

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और तथ्यात्मकता की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इसकी प्रामाणिकता को तीन श्रेणियों में बांटा गया है- प्रामाणिक, अप्रामाणिक एवं अर्धप्रामाणिक।

1. प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में कर्नल टॉड, मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या आदि।
2. अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में मुंशी देवी प्रसाद, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

3. अर्द्धप्रामाणिक मानने वाले में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

इस ग्रंथ में उस समय के लगभग सभी छंदों का प्रयोग हुआ है। वीर रस की प्रधानता के कारण इसमें छप्पय छंद प्रमुख है। इसमें लगभग 5000 छंदों का प्रयोग हुआ है, जिस कारण इस रचना को छंदों का अजायबघर कहा गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार पृथ्वीराज रासो शुक-शुकी संवाद में लिखा गया है। अंततः कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' वीर रस का हिंदी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। भाषा-शैली सर्वत्र प्रभावपूर्ण है और वर्ण्य विषय के अनुरूप काव्य बदलती रहती है। रचना के इन समस्त गुणों पर दृष्टिपात किया जाए तो यह एक सुंदर महाकाव्य प्रमाणित होता है और निःसंदेह आधुनिक भारतीय आर्यभाषा साहित्य के आदि युग की विशिष्ट कृति ठहरती है।

4.5.6 विजयपाल रासो

रासो ग्रंथ परंपरा में विजयपाल रासो का नाम भी लिया जाता है। यह गीत गाथात्मक रासो काव्य है। इसके रचयिता नल्लसिंह है। मिश्र बंधुओं के अनुसार इस का रचनाकाल 1298 ई. के आसपास है। इसमें केवल 42 छंद ही मिलते हैं। इस लघु काव्य में राजा विजयपाल सिंह के युद्ध का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- पृथ्वीराज रासो को छंदों का अजायबघर कहा जाता है।

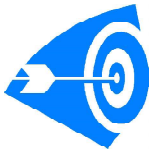
इन ग्रंथो के अतिरिक्त अन्य रासो ग्रंथ एवं उनके कवियों के नाम इस प्रकार हैं-

1. जयमयंक जस चंद्रिका – कवि मधुकर
2. बुद्धि रासो – कवि जल्हण
3. मुंज रासो – मुंज कवि
4. रणमल छंद – श्रीधर
5. भरतेश्वर बाहुबलि रास – शालिभद्र सूरि
6. जयचंद प्रकाश – भट्ट केदार
7. परमात्म प्रकाश – जोईंदु
8. स्थूलिभद्र रास – जिन्न धर्म सूरि
9. राम रासो – माधवदास चारण



4.6 सारांश

हिंदी साहित्य के आदिकाल में रचित रासो काव्य का हिंदी साहित्य में विशेष प्रभाव रहा है। इन रासो ग्रन्थों से यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि रासो काव्य मूलत: प्रशंसापरक चरित काव्य हैं। हिन्दी साहित्य में रासो ग्रन्थों की एक समृद्ध परम्परा रही है। यह परम्परा आदिकाल से लेकर 19वीं शताब्दी तक विद्यमान थी। हिन्दी साहित्य में उपदेशमूलक धार्मिक रासो काव्यों का महत्व कम होते हुए भी श्रृंगारपरक और वीररसात्मक काव्यों का साहित्यिक क्षेत्रों में अद्वितीय स्थान रहा है। रासो काव्य-परम्परा में 'पृथ्वीराज रासो' को सर्वश्रेष्ट माना जाता है। कवि ने वीर और श्रृंगार रस का जैसा मार्मिक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है, अन्यत्र दुर्लभ है।



4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : हिंदी साहित्य के आदिकाल में रचित जैन 'रासकाव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो काव्य से भिन्न है। जैन रासो काव्य में धार्मिक दृष्टि प्रधान होने की वजह से वर्णन की वह पद्धतियाँ प्रयुक्त नहीं हुई, जो वीर गाथापरक रासो-ग्रंथों में मिलती है। रासो काव्य का मूल संबंध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है।

अधिक जानकारी के लिए ऊपर दिए हुए **'रास और रासो से तात्पर्य', रासो शब्द की व्युत्पत्ति** और **'प्रमुख रासो ग्रन्थ** और **उनके रचयिता का परिचय'** को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

प्रश्न 2 का उत्तर : रासो काव्य परंपरा में 'पृथ्वीराज रासो' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस ग्रंथ को हिंदी का प्रथम महाकाव्य एवं चंदबरदाई को प्रथम महाकवि की संज्ञा दी है। पृथ्वीराज रासो में दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र के साथ-साथ, सामन्ती वीर-युग की सभ्यता, रहन-सहन, मान-मर्यादा, ख़ान-पान तथा अन्य जीवन-विधियों का सुन्दर तरीके से वर्णन किया गया है। अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए **'पृथवीराज रासो'** को पढ़ें।



4.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

- हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का इतिहास- लक्ष्मी लाल बैरागी, संघी प्रकाशन, जयपुर।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का आदिकाल- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



4.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. भरतमुनि के अनुसार रास शब्द का अर्थ क्या है?
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति संबंधी विचारों का उल्लेख कीजिए।
3. किन्हीं पाँच रासो ग्रंथों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख)निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. रासो से आप क्या समझते हैं? हिंदी साहित्य के रासो काव्य पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
2. रासो काव्य की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
3. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता सिद्ध कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 5 : भक्तिकाल

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 भक्ति आन्दोलन उद्भव और विकास

5.4 भक्ति आन्दोलन उदय संबंधी विभिन्न मत

5.5 भक्तिकालीन परिस्थितियाँ

- 5.5.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ
- 5.5.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
- 5.5.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
- 5.5.4 आर्थिक परिस्थितियाँ
- 5.5.5 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
- 5.5.6 साहित्यिक परिस्थितियाँ

5.6 भक्तिकालीन शाखाओं का सामान्य परिचय

5.7 भक्तिकाल का वर्गीकरण

5.8 सारांश

5.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

5.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- भक्ति आन्दोलन और उसके उद्भव एवं विकास के बारे में जानेंगे।
- भक्तिकालीन परिस्थितियों से अवगत होंगे।
- भक्तिकाल के विभिन्न शाखाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

5. 2 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का विशेष महत्व है। आदिकाल के बाद आये इस युग को 'पूर्व मध्यकाल' भी कहा गया है। इसकी समयावधि हैं 1375 वि. से 1700 वि. तक। इस काल में मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से आहत होकर हिन्दू जनता ने प्रभु की शरण में ही अपने आपको सूरक्षित अनुभव किया और भक्ति-मार्ग का अनुसरण किया। भक्ति आन्दोलन

में नये विचारों का जन्म हुआ। इसने भारतीय संस्कृति एवं समाज को एक दिशा दी। इस आन्दोलन ने एक ओर मानवीय भावनाओं को उभारा, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिवादी विचारधारा को सशक्त बनाया, जिसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करके सदाचार, मानवता, भक्ति और प्रेम के महत्व को प्रतिपादित किया। इस युग की महत्वा को देखकर ग्रियर्सन ने इसे स्वर्णकाल, श्यामसुंदर दास ने इसे स्वर्ण युग, रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे लोकजागरण काल तक कहा।

5.3 भक्ति आन्दोलन उद्भव एवं विकास

भक्ति आंदोलन के उदय की व्याख्या सभी विद्वानों, साहित्यकारों तथा इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से की है, मगर भक्ति आंदोलन के सदंर्भ में यह माना जाता है कि भक्ति का सबसे पहले उदय दक्षिण भारत के आलवर संतों द्वारा हुई है। इस सम्बन्ध में कहा गया है- "भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाए रामानन्द।"

रामानंद मानते थे कि ईश्वर की भक्ति करने का अधिकार सभी वर्गो को समान रूप से होना चाहिये, लेकिन ईश्वर की प्राप्ति तभी हो सकती है जब ईश्वर को सच्चे मन से ध्यान किया जाए।

भक्ति का जो स्त्रोत दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आने लगा था, उसे तत्कालीन सामाजिक वातावरण तथा राजनैतिक परिवर्तन के एक परिवेश ने जनता के हृदय में फैलने के लिए एक अवसर दिया। रामानन्द, रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में हुए और उन्होंने रामानन्दी सम्प्रदाय खड़ा कर दिया तथा विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। इन सभी का मूल उद्देश्य ज्ञान के साथ भक्ति का तादात्मय स्थापित करना था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व रामचन्द्र शुक्ल भक्ति के उदय की व्याख्या अलग-अलग रूपों में करते हैं। जिसे हम नीचे चर्चा करेंगे।

5.4 भक्ति आन्दोलन उदय सम्बन्धी विभिन्न मत

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार-

(i) भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित होने के बाद हिन्दू जनता की हताश, निराश एवं पराजित मनोवृत्ति का ईश्वर की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक था।

(ii) हिन्दू जनता ने भक्ति भावना मे माध्यम से अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाकर पराजित मनोवृत्ति का शमन किया।

(iii) भक्ति का मूल स्त्रोत दक्षिण भारत मे था और 7वीं सदी मे आलवर भक्तों ने जो भक्ति भावना प्रारम्भ की उसे उत्तर भारत मे फैलने के लिये अनुकूल परिस्थितियां भी प्राप्त हुई।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - "भक्ति भावना पराजित मनोवृत्ति की उपज

नहीं है .....हिन्दू सदा से आशावादी जाति रही है। उन्होंने तर्क दिया कि किसी भी भक्ति कवि के काव्य मे निराशा का कोई पुट नहीं है। उन्होंने भक्ति आन्दोलन को भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास माना है।" वे आगे कहते हैं- "मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा का उमड़ना था तो पहले सिन्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था पर हुई दक्षिण में।"

सर जार्ज ग्रियर्सन भक्ति अन्दोलन का उदय के पीछे ईसाई धर्म के प्रभाव को मानते हैं, उनका यह तर्क बिल्कुल असंगत और हास्यास्पद है, क्योंकि भारतवर्ष में भक्ति परम्परा का इतिहास कई हजार साल पुराना है।

हिंदी साहित्य मे भक्ति अन्दोलन का प्रारम्भ दक्षिण भारत के आलवार भक्तों की परम्परा मे ही हुआ। उस समय देश में राजनीतिक अस्थिरता और अव्यवस्था का दौर था। धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भी ठीक नहीं थी। जैन और बौद्ध धर्म के कारण भक्ति मार्ग में अनेक विकृतियाँ और बाधाएँ भी उत्पन्न हो रही थी। भक्ति परम्परा प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं दर्शन के एक अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक अविछिन्न धारा के रूप में पहले से ही उपस्थित तो थी ही लेकिन दक्षिण भारत में भक्ति का जो स्रोत फूटा वह धीरे-धीरे पूरे देश में फ़ैल गया।

5.5 भक्तिकालीन परिस्थितियाँ

हिंदी साहित्य के काल विभाजन में दूसरे काल को भक्ति काल की संज्ञा दी गई है। भक्ति काल का समय संवत् 1375 से लेकर संवत् 1700 तक निर्धारित किया गया है। साहित्य समाज की उपज होता है और समाज से कटकर साहित्य की कोई उपयोगिता नहीं रहती। साहित्यकार स्वयं भी समाज की उपज होता है और सामाजिक परिस्थितियाँ उसे बनाती है। किसी भी युग के साहित्य को जानने के लिए उस युग की परिस्थितियों को जानना नितांत आवश्यक माना गया है। भक्ति काल में भक्ति भावना की प्रधानता होने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को भक्ति काल का नाम दिया।

आदिकाल के वीरता और श्रृंगार से परिपूर्ण साहित्य से एकदम भिन्न इस काल के साहित्य में भक्ति का शांत झरना बहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भक्ति आंदोलन के विकास को दो चरणों में बांटा जा सकता है-पहले चरण के अंतर्गत दक्षिण भारत का भक्ति आंदोलन आता है और दूसरे चरण में उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन आता है। हिंदी साहित्य के भक्ति काल का संबंध उत्तरी भारत के भक्ति आंदोलन से है। इस युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विवेचन इस प्रकार है-

5.5.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक दृष्टि से भक्ति काल का युग व्यवस्था का युग कहा जा सकता है। इस युग में मुख्य रूप से तुगलक वंश से लेकर मुगल वंश के बादशाह शाहजहां के शासनकाल तक का समय संकलित है। सर्वप्रथम तुगलक और लोधी वंश के शासकों ने यहाँ राज्य किया। यह शासक प्रयोग अत्याचारी होने के साथ-साथ सत्ता के लालची भी थे। इनमें सांप्रदायिकता की भावना अधिक थी और उन्होंने इस्लामी कानूनों को आधार बनाकर शासन किया। इस युग में गयासुद्दीन बलबन (बहाउद्दीन) और अलाउद्दीन खिलजी जैसे क्रूर शासकों ने तलवार के बल पर अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। उत्तरी भारत का अधिकांश भाग विदेशी हमलावरों के अधीन हो चुका था। विशेषकर अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा, महाराष्ट्र और गुजरात को जीतकर राजस्थान का भी कुछ क्षेत्र जीत लिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात पंजाब के गयासुद्दीन बलबन ने दिल्ली का शासन संभाल लिया। उसने बंगाल, महाराष्ट्र तथा आंध्र को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया किंतु धीरे-धीरे मेवाड़ में राजपूतों की, तिरहुत में ब्राह्मणों की, बुंदेलखंड में बुंदेलों की, उड़ीसा में सूर्यवंशियों की, दक्षिण भारत में बहमनी शासकों की शक्ति बढ़ी। इसके पश्चात पठानों ने दिल्ली पर विजय प्राप्त की और उन्होंने बिहार तक अपने राज्य को फैला दिया। 1526 में बाबर के आक्रमण से न केवल दिल्ली का इब्राहिम लोधी पराजित हुआ बल्कि राणा सांगा की पराजय से राजपूत शक्ति भी बिखर गई। मुगल शासकों ने भी भारतवासियों पर मनमाने अत्याचार किए। अनेक हिंदुओं को मुसलमान बनाया गया। यही नहीं मुसलमानों में भी शिया और सुन्नी के नाम पर झगड़े होने लगे। हुमायूं और शेरशाह का संघर्ष हुआ। शेरशाह अधिक दिनों तक दिल्ली पर शासन नहीं कर सका। अकबर, जहांगीर और शाहजहां के काल में थोड़ी बहुत शांति बनी रही। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता एवं राजपूत नीति ने उसके साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान की। महाराणा प्रताप जैसे योद्धा उस समय भी आजादी के लिए संघर्ष करते रहे। कुल मिलाकर कहा जाए तो पूरे देश में गृह-कलह, हिंसा और अत्याचार का वातावरण फैला रहा। इसलिए भक्ति कालीन परिस्थितियां भारत वासियों के लिए सर्वथा प्रतिकूल ही थी। यद्यपि भक्ति कालीन कवियों ने धर्म और शांति के प्रचार पर बल दिया, लेकिन फिर भी तुलसीदास जैसे कवि को यह कहना पड़ा कि वैदिक धर्म नष्ट हो गया और राजा भूमि चोर बन गए हैं। अत: राजनीतिक दृष्टि से यह काल युद्ध संघर्ष और अशांति का काल था।

5.5.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद भारतीय जनता मुस्लिम धर्म से बहुत

प्रभावित हुई। कुछ मुगल शासकों ने तो बलपूर्वक हिंदुओं को मुसलमान बनाया। दूसरी ओर हिंदुओं में जाति-पाति और ऊंच-नीच का भेदभाव अत्याधिक कट्टर हो गया था। तत्कालीन भारतीय समाज रूढ़िग्रस्त एवं जातिवाद पर आधारित समाज बनता जा रहा था। निम्न जातियों के लोग अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश थे। अकबर की उदार नीतियों का प्रभाव भी समाज पर पड़ रहा था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा तथा सती प्रथा का बोलबाला था। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। बहु-विवाह का प्रचलन था तथा अमीरों और नवाबों की अंत:पुरों में अनेक रानियां होती थी। भक्ति काल में भारतीय समाज पर मुख्य रूप से दो वर्गों में। एक वर्ग राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, सुल्तान तथा सामंतों आदि का था, वहीं दूसरे वर्ग में किसान, मजदुर, दलित, राज्य कर्मचारी और पारंपरिक काम धंधे में लगे लोग आते थे। साधु संतों में पाखंड एवं बाहरी आडंबरों का बोलबाला था। इस काल में मुख्य रूप से हिंदू समाज की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। यह असहाय, दरिद्रता और अत्याचार की भट्टी में झुलस रहा था। इस तरह सामाजिक दृष्टि से हिंदू जाति काफी पिछड़ चुकी थी। उस समय हिंदू और मुसलमान अपने त्यौहार रुचि पूर्वक मनाते थे। आखेट तथा जुआ जैसे व्यसन उच्च वर्ग में थे। तीतरबाजी, कबूतरबाजी, पतंगबाजी आदि का प्रचलन भी समाज में था। सारांश में कहा जा सकता है कि भक्तिकाल में समाज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। एक तरफ परंपरावादी लोग अपनी परंपराओं को बनाए रखने के पक्ष में थे तो दूसरी तरफ नव इस्लाम के हितैषी लोग स्वयं को प्रगतिशील बता कर समाज में बदलाव लाना चाहते थे।

5.5.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

धार्मिक दृष्टि से यह युग उत्कर्ष का काल था। पूर्व में सिद्ध का वर्माचार अब समाप्त हो चुका था। अपनी समस्त विकृतियों के साथ वज्रयान अब समाज में प्रभावहीन हो रहा था। शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म की विकृतियों पर प्रहार करते हुए फिर से सनातन धर्म की स्थापना की। नाथ मुनियों ने योग साधना पर बल दिया। दक्षिण भारत में 12 आलवार संत हुए जिनमें एक भक्तिन अंडाल भी थी। इन्होंने सगुण भक्ति के लिए लोगों को प्रेरित किया। दक्षिण से शुरू हुई इस भक्ति लहर का उत्तर भारत में व्यापक प्रभाव पड़ा। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों में पूजा, नमाज, माला, तीर्थ यात्रा, रोजा जैसे बाहरी आडंबरों की अधिकता हो गई थी। इन धर्मों में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों और आडंबर को रोकने में तत्कालीन संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कबीर का समाज सुधार, जायसी का प्रेम, तुलसी का समन्वयवाद तथा सूरदास द्वारा कृष्ण का लोकरंजन

स्वरूप का चित्रण निश्चय ही तत्कालीन परिस्थितियों की देन है।

5.5.4 आर्थिक परिस्थितियाँ

इस समय आर्थिक दृष्टि से हिंदू लोग बिछड़ने लगे थे और कुछ लोगों के लिए तो जीवित रहना भी कठिन हो गया था। एक विदेशी यात्री वर्नियर ने लिखा है – "उन हिंदुओं के पास धन संचित करने के लिए कोई साधन नहीं रह गए थे और उनमें से अधिकांश को आजीविका के लिए निरंतर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न कोटि का था। करों का सारा भार उन्हीं पर था। राज्य पर उनको अप्राप्त थे।"शेरशाह सूरी का राज्य भले ही अल्पकाल के लिए रहा हो, लेकिन उसने जमींदारी प्रथा को समाप्त करके राज्य में खुशहाली लाने का प्रयास किया। मुगल राजाओं ने फिर इस प्रथा को आरंभ कर दिया। भक्ति काल में सामंती समाज में आर्थिक उत्पादन का आधार कृषि ही थी। कृषि से जुड़े काम धंधे, हस्तकलाएं तथा व्यापार आदि को ही आजीविका का प्रमुख साधन माना जा सकता था। उच्च वर्ग विलासिता पूर्ण जिंदगी जी रहे थे और निम्न वर्ग अत्यंत निर्धनता में जीवन-यापन कर रहा था। मजदूरों, कारीगरों तथा मेहनतकश किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी।



महत्वपूर्ण बिंदु

- समन्वय भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है।

5.5.5 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

भारतीय धर्म और संस्कृति में समन्वय की भावना को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। समन्वयात्मकता, भारतीय संस्कृति की विशेषता है। विदेश से आने वाली संस्कृतियों को ही भारतीय संस्कृति ने अपना अंग नहीं बनाया बल्कि देश में उत्पन्न विरोधी विचारधाराओं को भी अपने अनुकूल बनाने का काम किया। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो भक्ति काल एक मिश्रित तथा समन्वित संस्कृति के विकास का काल है। इस्लाम के आने से एक बार पुन: भारत में सांस्कृतिक संक्रमण का दौर आया और खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा साहित्य, स्थापत्य कला, मूर्तिकला संगीत एवं चित्रकला में काफी बदलाव देखने को मिले। विदेशी तुर्क एवं भारतीय स्थापत्य शैली के मिश्रण से गुजराती एवं जौनपुरी स्थापत्य शैली का विकास हुआ। एलोरा के

समीप कैलाश मंदिर में शिव की मूर्ति के ऊपर बोधि वृक्ष स्थित है, चंबा नरेश अजय पाल के शासनकाल में उत्कीर्ण ब्रह्मा और शिव के साथ बुद्ध भी हैं। ताजमहल तथा लालकिला भारतीय ईरानी वस्तुकलाओं के सम्मिश्रण का उत्तम उदाहरण है। गीता में भगवान कृष्ण ने कर्म योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग को इकट्ठा कर दिया। वैदिक संस्कृति में कर्म को प्रधानता दी गई। उपनिषदों में ज्ञान पर बल दिया गया, पुराणों में भी भक्ति का विस्तार हुआ। साहित्य के प्रवाह में हिंदू मुस्लिम सगुण, निर्गुण, शैव, शाक्त सभी एक साथ बह गए। भक्ति काल के कवियों ने भक्ति साहित्य को संगीत से जोड़ा। संगीत के साथ ही चित्रकला में भी खूब उन्नति हुई। मुगल शासकों द्वारा चित्रकला को राजाश्रय प्रदान किया गया। भक्ति काल का साहित्य सांस्कृतिक समन्वय का सुंदर उदाहरण है।

5.5.6 साहित्यिक परिस्थितियाँ

इस समय उच्च हिंदू वर्ग के लोग संस्कृत का अध्ययन करते थे। फारसी राजभाषा थी, कुछ हिंदुओं ने रोजगार के लिए इस भाषा को सीखा। हाट-बाजार तथा सेना में आम बोलचाल की भाषा उर्दू के रूप में विकसित हो रही थी। पहले की भाषा अवधी और ब्रज बनती जा रही थी। संत कवियों ने बोलचाल की भाषा को महत्व दिया तथा उनकी भाषा सधुक्कड़ी या खिचड़ी भाषा कहलाने लगी। भक्ति काल में प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य तथा गीति काव्य लिखे गये। संस्कृत भाषा के कुछ ग्रंथों की टीकाएं भी इस समय लिखी गई। इस युग के अधिकांश कवि भक्त कवि थे तथा धर्म और भक्ति को आधार बनाकर काव्य रचनाएँ हो रही थी। इस काल में कबीर, सूर, तुलसी, जायसी आदि महान कवि हुए हैं। भक्तिकालीन साहित्य को दिखाकर यह कहा जा सकता है कि जिसने न केवल धर्म की व्याख्या की बल्कि हिंदू समाज को सुख शांति भी प्रदान की। यही कारण है कि भक्तिकालीन साहित्य हृदय, मन और आत्मा की भूख को शांत करता है। इसी आधार पर भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है।

5.6 भक्तिकालीन शाखाओं का सामान्य परिचय

विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रतिपादित सम्प्रदाय :

1. विशिष्टाद्वैतवाद (श्री सम्प्रदाय) - रामानुजाचार्य
2. अद्वैतवाद - शंकराचार्य
3. राधाबल्लभी सम्प्रदाय - स्वामी हित हरिवंश
4. शुद्धाद्वैतवाद - वल्लभाचार्य

5. रामावत सम्प्रदाय – रामानन्द
6. द्वैतवाद / ब्रह्म सम्प्रदाय – माधवाचार्य
7. सनकादि सम्प्रदाय – निम्बार्काचार्य
8. सखी सम्प्रदाय – हरिदास
9. रुद्र सम्प्रदाय – विष्णु स्वामी
10. गौड़ीय सम्प्रदाय – चैतन्य महाप्रभु



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. सगुण और निर्गुण भक्तिधारा में निहित अंतरों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास पर एक निबंध लिखिए।

5.7 भक्ति काल का वर्गीकरण

भक्तिकालीन साहित्य की साधना पद्धतियों की विभिन्नताओं और विशेषताओं के आधार पर इसको निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा दो धाराओ में बाटा जा सकता है, जिसका विवरण निम्नलिखित है –

सगुण भक्ति : सगुण अथवा साकार रूप की जहाँ पूजा अथवा भक्ति की जाती है, उसे सगुन भक्ति कहते हैं। इस भक्तिधारा के काव्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं – रामकाव्य और कृष्ण काव्य।

रामकाव्य परम्परा में राम को प्रमुख मानकर उनकी पूजा, अर्चना की जाती है। इस धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास है। दूसरी और कृष्णकाव्य परम्परा में कृष्ण को प्रमुख मानकर उनकी पूजा, अर्चना की जाती है। इस परम्परा के प्रतिनिधि कवि सूरदास है।

निर्गुण भक्ति : निर्गुण भक्तिधारा को भी सूफी और संत नाम से दो शाखाओं में बाँटा गया हैं। संतकाव्य परम्परा को ज्ञानमार्गी शाखा भी कहा जाता हैं तथा इस परंपरा के प्रतिनिधि कवि है– कबीरदास। दूसरी और सूफ़ीकाव्य परम्परा को प्रेमामार्गी शाखा के नाम से भी जाना जाता है तथा इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि जायसी को माना जाता है।



5.8 सारांश

भक्ति–साहित्य में भले ही निर्गुण–सगुण का भेद चला हो लेकिन मध्ययुगीन कवियों ने इस भेद को उस तरह से बढ़ने नहीं दिया जिससे इनके अनुयायियों में वैमनस्य उत्पन्न हो। इस विषय में तुलसीदास का एक मत प्रसिद्द है–"अगुनहि सगुनहि नहीं कुछ भेदा।" इस प्रकार

हम देखते हैं कि सगुण और निर्गुण उपासक दोनों में प्रेम और मानवता का धागा जुड़ा हुआ दिखाई देता है। भक्ति- आंदोलन के उद्भव ने हिन्दू समाज के वभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू तथा मुसलमान निर्गुण तथा सगुण भक्तिधाराओं में विभक्त होते हुए भी पारस्परिक भेद भुलाकर मानवता के उदात्त मूल्यों की स्थापना में लगे हुए थे। भक्ति आंदोलन के सभी संत कवियों ने उस समय समाज में फैली बुराइयों को रोकने का प्रयत्न किया और शैवों तथा वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए द्वेष को खत्म किया और लोक-धर्म व भक्तिसाधना को सम्मिलत करके जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। उस समय भक्ति का जो स्वरूप स्थापित किया गया वही आज तक जनता में प्रचलित है, जो भक्तिकाल की श्रेष्ठता सत्यापित करने के लिये पर्याप्त है।

5.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : सगुण अथवा साकार रूप की जहाँ पूजा अथवा भक्ति की जाती है, उसे सगुन भक्ति कहते हैं और जहाँ निर्गुण या निराकार ब्रह्म की भक्ति की जाती है, उसे निर्गुण भक्ति कहते हैं।

अधिक जानने के लिए पढ़ें- **"भक्तिकाल का वर्गीकरण"**।

प्रश्न 2 का उत्तर : भक्ति आंदोलन के उदय को लेकर विद्वानों में मतभेद है, पर भक्ति आंदोलन के सदंर्भ में यह माना जाता है कि भक्ति का उदय सबसे पहले दक्षिण भारत के आलवार संतों द्वारा हुई है।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए "भक्ति आन्दोलन उद्भव और विकास" को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

5.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्,

इलाहाबाद।

- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- उत्तर भारत की संत परंपरा- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
- हिंदी राम काव्य का स्वरूप और विकास : बदलते योगबोध के परिपेक्ष में- डॉ. प्रेमचंद महेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मध्यकालीन काव्य- चिंतन और संवेदना- करुणाशंकर उपाध्याय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



5.11 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. सखी संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति आंदोलन के उदय का कारण क्या है?
3. सगुन भक्तिधारा के तीन कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख)निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. भक्तिकाल से तात्पर्य क्या है? भक्तिकाल के प्रमुख शाखाओं पर आलोचना कीजिए।
2. भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कारणों को उल्लेख कर एक आलोचना प्रस्तुत कीजिए।
3. भक्तिकालीन परिस्थितियों पर सम्यक आलोचना प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 6 : संत काव्य

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 संत काव्य परम्परा और प्रमुख कवि

6.4 संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

6.5 सारांश

6.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

6.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- संत शब्द का अर्थ और संत साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे।
- संत साहित्य की परंपरा को जान सकेंगे।
- संत साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ अथवा प्रवृत्तियों से अवगत होंगे।

6.2 प्रस्तावना

संत शब्द का संबंध उस व्यक्ति से है, जिन्होंने उस परम तत्व का साक्षात्कार कर लिया है। साधारणत: ईश्वर के प्रति उन्मुख सज्जन को ही संत कहा जाता है, जो सदैव निराकार सत्य में तल्लीन रहता हो। संत किसे कहा जाता है इस संबंध में विद्वानों ने अपना-अपना मत व्यक्त किया है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध शांत से मानकर इसका अर्थ उन्होंने निवृत्ति मार्गी अथवा वैरागी माना है। डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार- "संत शब्द सात से बना है, जिसका अर्थ है- ईश्वरोन्मुखी कोई भी सजग पुरुष।"

संत काव्य के अनुसार मूलत: ईश्वर का कोई नाम, रूप और आकार नहीं है। इस काव्यधारा के कवि साधक को संत के नाम से ही पुकारा जाता है। भक्तिकाल के निर्गुण शाखा के जो संत है अथवा उनके द्वारा लिखा गया जो संत-काव्य है, उस पर ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि संतकाव्य उस काव्य को कहा जाता है जिसे संतों ने रचना किया। लेकिन हिंदी में जब संत काव्य कहा जाता है तो उसका मतलब निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी कवियों द्वारा रचित काव्य ही दिमाग में आती है।

6.3 संतकाव्य परम्परा और प्रमुख कवि

महाराष्ट्र में नामदेव ने इस परंपरा की शुरुआत की थी। संत काव्य का प्रारंभ 1267 ई. में संत नामदेव से हुआ। इस प्रवृत्ति को बाद में कबीर ने विकसित किया। संत परंपरा की बीज आदिकाल के सिद्ध व नाथ कवियों की रचनाओं में नजर आती है। हिंदी साहित्य के संत कवियों में से कबीर, रैदास, नानक, धर्मदास, सींगा, लालदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, संत रज्जब, चरण दास आदि का नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सुन्दरदास को छोड़कर सभी कवि कामगत तबके से आते हैं। उदाहरण के तौर पर कबीर (जुलाहा), नामदेव (दर्जी), रैदास (चमार), दादू (बुनकर) आदि। इस परम्परा के कवि और उनके काव्यों के संबंध में सामान्य जानकारियाँ नीचे उपलब्ध है–

कबीर दास :

स्वामी रामानंद के शिष्य कबीर दास इस परंपरा के प्रतिनिधि कवि है। कहा जाता है कि कबीर एक जुलाहा परिवार में बढ़े हुए थे। कबीर के बारे में प्रसिद्ध है कि– "मसि कागद छुयौ नहीं, कलम गह्यौ नहीं हाथ।" अत: यह निर्विवाद है कि कबीर ने कुछ लिखा नहीं था उनके जो वाणी हैं, उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किया गया अथवा संगृहीत किया गया था। कबीर जन्म से ही विद्रोही, समाज सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिंब उनके साहित्य में विद्यमान है। उनके एक–एक शब्द पाखंडियों और धार्मिक आडंबरों की धज्जियाँ उड़ाते हैं। भाषा पर जबरदस्त अधिकारों के लिए उन्हें वाणी के डिक्टेटर कहे जाते हैं। कबीर के सम्पूर्ण साहित्य को 'बीजक' में संगृहित किया गया है।

रैदास :

निम्न वर्ग में जन्म होकर भी उत्तम जीवन शैली, उत्कृष्ट साधना–पद्धति तथा उल्लेखनीय आचरण से संत रैदास मध्ययुगीन साधकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संत प्रवृत्ति के अनुरूप ही उन्होंने मथुरा, वृंदावन, काशी, गया आदि की भ्रमण की। उनके लिए निर्गुण ब्रह्म अनुभूति उनके जिज्ञासा का विषय रहा। मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य विधानों का विरोध कर आतंरिक साधना को रैदास प्रमुखता देते थे। अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने सहज–सरल व्यावहारिक ब्रज भाषा को अपनाया, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ीबोली और उर्दू तथा फारसी शब्दों के मिश्रण थे।

नानकदेव :

नानक पंथ के प्रवर्तक नानकदेव ने धार्मिक रुढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधन तथा अन्याय के ख़िलाफ सदैव आवाज उठाते थे। अन्य धार्मिक विचारधारा को सम्मान प्रदान करते हुए भी उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को ही हमेशा उच्च माना। नानक के पद 'ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। आसा दी वार, रहिरास और सोहिला उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

सींगा :

संत सींगा उच्चकोटि के विचारक थे। निर्गुण ब्रह्म में विश्वास रखनेवाले सींगा के अनुसार लोगों को परम तत्व की खोज में मंदिर, मस्जिद और तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं है, वह सबसे हृदय में निवास करता है। उनके द्वारा रचित पदों की संख्या 800 बतायी जाती हैं, मगर अभी तक यह उपलब्ध नहीं है। संप्रति, उनके काव्य का एक छोटा-सा संग्रह संत सिंगा जी नाम से उपलब्ध है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- कबीर को वाणी के डिक्टेटर कहा जाता है ।

लालदास :

संत लालदास लाल पंथ के प्रवर्तक थे। लालदास की विचारधारा कबीर मत से प्रभावित है। इन्होंने सत्यानुभूति, अंत:करण की शुद्धता और समदृष्टि पर बल दिया है। उनकी रचनाएँ 'लालदास की चेतावनी' में संकलित है।

दादूदयाल :

दादू पंथ के प्रवर्तक दादूदयाल धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। मद्यकालीन धर्म साधकों में दादू का नाम अत्यंत ही प्रभावशाली था।

सुन्दरदास :

सुन्दरदास संत दादूदयाल के शिष्य थे। उनके द्वारा बयालीस ग्रथों की रचना हुई हैं, जिनमें से ज्ञानसमुद्र और सुन्दरविलास सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सुन्दरदास की रचनाओं में भक्ति, योग-साधना और नीति को प्रमुखता दिया गया है।

संत रज्जब :

रज्जब का सम्पूर्ण नाम रज्जब आली खां है। दादूदयाल की समग्र रचनाओं को 'अंगवधू' शीर्षक कृति में इन्होंने ही संकलित किया था। संत रज्जब की रचनाएँ 'रज्जबबानी' में संगृहित' हैं।

6.4 संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

संत काव्य में नजर आनेवाली प्रवृत्तियों को कुछ शीर्षकों में बांटकर निम्न रूप से विचार किया गया हैं-

क) **निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना :** संत काव्य की प्रमुख विशेषताओं में से प्रमुख है- निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना। इनका ईस्वर निर्गुण, निराकार और गुणों से परे है, जिसका कोई आकार नहीं है, जो सर्वशक्तिमान तथा कण-कण में व्याप्त है। उदाहरण प्रस्तुत है-

"निर्गुण राम नाम जपो रे भाई,
अविगत की गति लखी न जाई।"

निर्गुण और निराकार ब्रह्म में विश्वास होने के कारण संत कवियों ने बहुदेववाद और अवतारवाद का खंडन किया है।

ख) एकेश्वरवाद की स्थापना : तत्कालीन समय में धार्मिक आडंबर बढ़ गया था। एक धर्म से विभिन्न अलग-अलग शाखाएँ, संप्रदाय निकालने लगे थे। आम जनता भर्मित थे। आखिर वे पूजा करे तो ईश्वर के किस रूप को करे, किसकी करे ?



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. समाज सुधारक के रूप में कबीरदास का मूल्यांकन कीजिए।

ग) गुरु का महत्व : संत कवियों की वाणी में गुरु का महत्व सबसे अधिक देखने को मिला है। कबीर अपने दोहों में गुरु और ईश्वर की महिमा को प्रतिप्रदित करते हुए गुरु को ही ईश्वर से अधिक महत्व प्रदान किया है। क्योंकि गुरु से ज्ञान प्राप्त कर ही लोग ईश्वर की प्राप्ति करते हैं। गुरु कृपा बिना संसार में मुक्ति संभव नहीं है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

गुरु धोबी सीस का कपड़ा, साबुन सिरजनहार।
सूरति शिला पर धोइए निकसे ज्योति अपार।

अर्थात शिष्य रूपी कपड़े को प्रभु नामक साबुन से साफ करते हैं। असल में संतों के अनुसार गुरु ही एकमात्र चीज है, जो शिष्य के तमाम मनोविकारों को दूर करता है।

घ) प्रतीक योजना : संत काव्य में प्रयोग होने वाली प्रतीक मुख्यत: बौद्ध तथा नाथ-सम्प्रदायों से या फिर सीधे-सीधे जन-जीवन से लिए गए हैं। इन प्रतीक योजनाओं को संख्यावाचक, पारिभाषिक, अन्योक्ति परक और उलटबाँसी के सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। जैसे- संख्यावाचक- अष्ट कमल, पारिभाषिक- गंगा-यमुना, अन्योक्ति परक- बालम, उलटबाँसी- मृग आदि।

ङ) बाह्याडम्बर और पाखण्ड का विरोध : संत कवियों की प्रकृति विद्रोही और क्रांतिकारी जैसा है। ये लोग समाज में व्याप्त अन्याय, कर्मकांड, अंधविश्वास आदि का खोलकर विरोध करते हैं। तत्कालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में फैली कर्मकांड और आडंबर जैसे- मूर्तिपूजा, छापा-तिलक, तीर्थ-व्रत, रोजा, नमाज आदि का डटकर विरोध किया। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

पाहन पूजे हरि मिले तो में पुजू पहाड़।
ताते यह चक्की भली पिस खाए संसार।।

च) जात-पात का विरोध : तत्कालीन भारतीय समाज जातिगत भेदभाव से ग्रस्त थे। जाति एवं वर्णगत विषमताओं को दूर करने के लिए संतों ने काफी प्रयास किया। कबीर की एक दोहा इस सन्दर्भ में प्रस्तुत है-

जाति न पूछे साधू की पूछ लीजिये उसका ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।

छ) **रहस्यवादी चिंतन :** संत कवि मूलत रहस्यवादी है। आत्मा तथा परमात्मा को प्रेमी-प्रेमिका के रूप में स्वीकार करते हैं। ये लोग ईश्वर को उस असीम सत्य को जानकर स्वीकार करते हैं कि एक दिन सबको ईश्वर में ही लीन होना पड़ेगा। लोग माया के कारण खुद को तो अलग पाते हैं। अत: लोगों को उससे दूर रहकर ईश्वर में लीन होना है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है भीतर बहार पानी
फुटा कुम्भ जल जलहिं सामना, यह तत् कहत् ग्यानी।

ज) **भाषा :** संत कवि समाज सुधारक पहले थे और बाद में कवि। उनका लक्ष्य समाज सुधार एवं विश्व धर्म का सन्देश देना था। अत: ये लोग साधारण जनगण को ध्यान में रखते हुए अपने साहित्य की रचना लोकभाषा में की है। दूसरी ओर ये कवि घुम्मकड़ थे, अत: ये लोग विभिन्न देशों का भ्रमण करते थे और उनकी ही भाषा में अपना साहित्य रचना करते थे। राजस्थानी, पंजाबी, खड़ीबोली, पूर्वी हिंदी, ब्रज, अरबी, फारसी आदि भाषाओं का मिश्रित रूप इनके काव्यों की विशेषता है।

झ) **अलंकार एवं छन्द :** संतों की वाणी में अलंकारों का प्रयोग उतना महत्व नहीं रखता। इन लोगों ने काव्यांगों के प्रति सचेत होकर अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। काव्य करते समय अथवा उनके विचारों को व्यक्त करते समय अनायास ही कुछ अलंकारों का प्रयोग उनके काव्य में हुआ है। जो इस प्रकार हैं- रूपक, उपमा, अन्युक्ति, वक्रोक्ति, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि। दूसरी ओर कहा जाता है कि सुन्दरदास के अतिरिक्त कोई भी संत कवि छन्दों के स्वरूप और महत्व के प्रति उतना सचेत नहीं थे। इनकी प्रतिभाएँ जन्मजात थी। अपनी अनुभूति, ज्ञान तथा परंपरा से प्राप्त भावनाओं को ही इन्होंने काव्यों में छन्दोबद्ध किया।



6.5 सारांश

कूल मिलाकर कहा जा सकता है कि भक्तिकाल में संत काव्यधारा का एक विशेष स्थान है। इन कवियों ने निर्गुण, निराकार, एक ईश्वर की प्रधानता पर बल दिया है। उनके काव्य उच्च कोटि का धार्मिक, नैतिक काव्य है। जिसमें उपदेशात्मकता का गुण प्रमुखता से है। तत्कालीन समय में ईश्वर को लेकर, धर्म को लेकर जो कुरीतियाँ प्रचलित थी, उन सबका संतों ने विरोध कर मानवीयता का सच्चा सन्देश दिया है। वर्ग, वर्ण को छोड़कर मानव मात्र में समानता, स्वतंत्रता का जो सन्देश इन संतों ने दिया है, वो साहित्यिक

एवं सामाजिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।



6.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : कबीर जन्म से ही विद्रोही, समाज सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिंब उनके साहित्य में विद्यमान है। उनके एक-एक शब्द पाखंडियों और धार्मिक आडंबरों की धज्जियाँ उड़ाते हैं।

अधिक जानकारी के लिए ऊपर दिए हुए **'संतकाव्य परंपरा और प्रमुख कवि'** तथा **'संतकाव्य की प्रवृत्तियाँ'** को ध्यानपूर्वक देखें।



6.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- उत्तर भारत की संत परंपरा- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद।



6.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. संतकाव्य परंपरा का प्रारंभ किससे माना जाता है?
2. चार संत कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।
3. नानकदेव पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. संत काव्य से आप क्या समझते हैं? उसके प्रवृत्तियों पर आलोचना कीजिए।
2. संत काव्य परम्परा की एक लेखा-जोखा प्रस्तुत कीजिए।
3. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं? उल्लेख कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 7 : सूफीकाव्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 सूफी काव्य परंपरा और इस संप्रदाय के प्रमुख कवि

7.4 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ

7.5 सारांश

7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

7.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- सूफी शब्द का अर्थ और सूफी साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे।
- सूफी-काव्य परंपरा को जान पाएंगे।
- सूफी साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ अथवा प्रवृत्तियों से अवगत होंगे।

7.2 प्रस्तावना

सूफी शब्द-'सुफ' से बना है जिसका अर्थ है 'पवित्र'। सूफी लोग सफेद ऊन के बने चोगे पहनते थे। उनका आचरण पवित्र एवं शुद्ध होता है।

हिंदी साहित्य में सूफी काव्यधारा का समय लगभग चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक माना गया है। इन सूफी कवियों ने भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न हिन्दू संस्कृति, परम्परा, धर्म आदि का यथावत परिचय देकर अपने तरीके से समाज में प्रचलित प्रेमाख्यानों को व्यक्त किया। असल में ईश्वरीय प्रेम के साथ-साथ मानवीय प्रेम को महत्व देनेवाली काव्यधारा ही सूफीकाव्य धारा है। इस काव्य परम्परा को विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा- प्रेममार्गी शाखा, प्रेमकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, प्रेमकथानक काव्य, सूफीकाव्य आदि। इन नामों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस परम्परा में प्रेम-तत्व को प्रमुखता दी गयी है। जहाँ विवाह, दाम्पत्य एवं सामाजिक मर्यादा को स्वीकार करके चलने वाले गार्हस्थिक प्रेम का निरूपण है। सूफी काव्य की प्रेम पद्धति परंपरागत भारतीय श्रृंगार की भावना से भिन्न तथा फारसी प्रेम पद्धतियों का अनुसरण है। इस प्रवृत्ति को विश्व साहित्य के सन्दर्भ में रोमांस अर्थात स्वच्छंद प्रेम कहा गया है।

7.3 सूफी काव्य परंपरा और इस संप्रदाय के प्रमुख कवि

हिंदी साहित्य के प्रारंभिक इतिहासकारों एवं आलोचकों ने सूफी काव्य में स्थित गार्हस्थिक प्रेम की कसौटी को विदेशी परंपराओं पर आधारित घोषित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी के सूफी काव्य परम्परा को फारसी-मसनवीय शैली पर आधारित मानते हुए उन्होंने कोई तर्क दिए हैं। जैसे- नायक की विरह को प्रमुखता देना, फ़ारसी-मसनवियों की भांति प्रेमाख्यान काव्यों में चित्रित प्रेम-चित्रण का लोकबाह्य और आदर्शात्मक रूप, कथा के प्रारंभ में ईश्वर-स्तुति, पैगंबर की वन्दना तथा राजा की प्रशंसा आदि।

हिंदी में इस प्रेमाख्यान काव्य परम्परा का विकास किस कवि द्वारा हुआ, यह विवादास्पद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'मृगावती' (1501) के रचयिता कुतुबन को इस परंपरा का प्रथम कवि माना है। दूसरी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ईश्वरदास की 'सत्यवतीकथा' (1500) को इस परम्परा का प्रथम कृति स्वीकारा है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने मुल्ला दाऊद के 'चंदायन' (1379) से इस परंपरा की शुरुआत मानी है। लेकिन डॉ. नगेंद्र ने असाइत द्वारा रचित 'हंसावली' (1370) की ओर इशारा किया है, उन्होंने अपने इतिहास में इस बात का जिक्र किया है कि हंसावली के प्रति किसी भी विद्वान ने ध्यान नहीं दिया।

नीचे इस परंपरा के प्रमुख रचनाओं और इनके रचनाकारों के बारे में आलोचना की गयी है-

हंसावली : राजस्थानी भाषा में लिखित इस कृति का रचानाकार असाइत है। इसमें अनेक कथाएँ हैं, जिनमें से प्रमुख कथा का संबंध पाटन की राजकुमारी हंसावली से है। इसका नायक राजकुमार स्वप्न में राजकुमारी के दर्शन करके मुग्ध हो जाता है और उसके प्रेम में पागल होकर योगीवेश मंत्री के साथ उसकी खोज में निकाल पड़ता है। अनेक संकटों का सामना करके अंत में राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है।

विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से प्रेमाख्यान काव्य परम्परा के सभी प्रवृत्तियाँ उपलब्ध है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. सूफी काव्य परंपरा के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

चंदायन : चंदायन की रचना मुल्ला दाऊद ने 1379 ई. में की थी। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इस ग्रन्थ का मूल नाम 'लोरकहा' या 'लोरकथा' माना है। मगर अब यह 'चंदायन' या 'चांदायन' नाम को ही लोग स्वीकारते हैं।

नायक लोर एवं नायिका चंदा का स्वच्छंद प्रेम, प्रथम दर्शन में ही प्रेमोत्पत्ति, नायक का

योगी बनकर घर से निकाल जाना, अनेक बाधाओं को सामना करते हुए नायिका को प्राप्त करना आदि भारतीय प्रेमाख्यान काव्य परंपरा की सभी विशेषताओं का सफलतापुर्वक निर्वाह हुआ हैं।

सत्यवतीकथा : ईश्वरदास ने इसकी रचना 1501 ई. में की थी। ईश्वरदास सगुणोपासक भक्त थे। सगुणोपासक भक्त पर सूफीमत का आरोपण कदाचित संभव नहीं है और इसी कारण शायद आचार्य शुक्ल ने इन्हें भक्तिकाल की किसी भी धारा में स्थान देना उचित नहीं समझा। लेकिन नगेंद्र ने अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि- "सौंदर्य, प्रेम और विरह के निरूपण एवं अवधी भाषा, दोहा-चौपाई-शैली आदि की दृष्टि से ये हिंदी प्रेमाख्यान-परंपरा के उच्चकोटि के कवियों में से एक माना जा सकता है। कवि ने आत्मपरिचय देने एवं कथा के रचनाकाल का निर्देश करने के साथ-साथ तत्कालीन बादशाह का भी उल्लेख किया है।"

कथा का संबंध राजकुमारी सत्यवती और राजकुमार ऋतुपर्ण से है। दोनों में प्रथम दर्शनजन्य प्रेम, नायक का शाप से मुक्ति तथा विभिन्न समस्याओं से मुक्ति लाभ कर नायिका से विवाह करना आदि प्रेमाख्यान काव्य की विशेषताएँ इस रचना में उपलब्ध है।

मृगावती : इसकी रचना कुतुबन ने सन् 1503 में की थी। जिसमें नायक राजकुमार और नायिका मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। मृगावती को पाने के लिए नायक योगी बनकर घर से निकाल जाता है। रास्ते में किसी और एक दूसरी सुंदरी को राक्षस के चंगुल से बचाकर उससे राजकुमार विवाह कर लेता है। लेकिन अंत में मृगावती को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। अपभ्रंश के जैनकाव्य की परम्परा के अनुसार राजकुमार के मृत्यु के पश्चात नायिका को सती होना दिखाया गया है।

माधवानल-कामकंदला : इसकी रचना 'गणपति ने सन् 1527 में की है। जिसमें नायक माधवा और नायिका कामकंदला के प्रेम निरूपण को अत्यंत रोमांचक शैली में किया गया है। भारतीय प्रेमाख्यान काव्य परम्परा का प्राय: सभी विशेषताओं का इसमें उल्लेख मिलता है।

पद्मावत : पद्मावत को इस परम्परा का पौढ़तम काव्य माना जाता है, जिसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी ने सन् 1540 की है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम-विवाह का चित्रण किया गया है।

ये मूलत: रोमांचक शैली में लिखा गया एक कथा-काव्य है। इसे प्रतीक रूप में लिखा गया है। यहाँ रत्नसेन 'मन' का, पद्मावती 'बुद्धि अर्थात परमात्मा का', नागमती संसार का, राघव-चेतन और अलाउद्दीन 'आसुरिक शक्ति' का प्रतीक है। कथा इस प्रकार है- पद्मावती अद्वितीय सुंदरी सिंहलदेश के राजा गंधर्वसेन की पुत्री थी। उसके पास हिरामन नाम का एक तोता था, जो किसी प्रकार चित्तौड़ के राजकुमार रत्नसेन के पास पहुँचता है। हिरामन के मुँह से पद्मावती का रूप-वर्णन सुनकर रत्नसेन साधू के वेश में घर से निकाल जाता है। विभिन्न विपत्तियों का सामना कर रत्नसेन अंत में पद्मावती को प्राप्त करता है। रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती और पद्मावती दोनों अपने पति के देहांत के बाद, उसी आग में जल कर मर जाती है, जिसमें रत्नसेन को

जलाया गया था।

मधुमालती : मंझन ने मधुमालती की रचना सन् 1545 की थी। अवधी भाषा एवं दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया इस ग्रन्थ में प्रेम की गंभीरता और एकोन्मुखता को दिखाया गया है। जहाँ नायक मधुमालती को पाने के लिए भांति-भांति के कष्टों को सहन कर लेता है। यह ग्रन्थ हिंदी प्रेमाख्यानों की बहुपत्निवादी परम्परा का अपवाद है।

माधवानल-कामकंदला चौपाई : इसकी रचना कुशललाभ ने 1556 ई. में राजस्थानी भाषा में की थी। जहाँ नायक-नायिका के अनेक जन्मों की कथा का प्रतिपादन अत्यंत विस्तार से किया गया है।

प्रेमविलास-प्रेमलता की कथा : इसकी रचना जैन श्रावक जटमल द्वारा 1556 ई. में हुई थी। कवि ने इसमें प्रारंभ में 'जैनाय नमः' से करते हुए अपना परिचय एवं तत्कालीन शासक की प्रशंसा की। इसकी कथावस्तु मौलिक है। दोहा-चौपाई छंदों में रचित इस ग्रन्थ में नायक-नायिका का प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन तथा दोनों के गुप्त विवाह और घर से भाग जाना आदि में भारतीय प्रेमाख्यान काव्य परंपरा के सभी विशेषताएँ उल्लेख है।

चित्रावली : उस्मान द्वारा 1613 ई. में चित्रावली की रचना हुई है। इसमें कथा-काव्य की प्रायः सभी प्रवृत्तियों- ईश्वरस्तुति, आत्मपरिचय, समकालीन शासक आदि का उल्लेख कर कवि ने चित्रावली के चित्र दर्शनजन्य प्रेम का निरूपण किया है। सौंदर्य, प्रेम और विरह की जिस तरह से यहाँ वर्णन हुआ है; उससे कवि की सहृदयता और भावुकता का उत्कृष्ट प्रमाण मिल जाता है।

इस परंपरा में उल्लेखित रचनाओं के अलावा शेख नबी द्वारा रचित 'ज्ञानद्वीप' (1619), जान कवि द्वारा रचित 'जान कवि के प्रेमाख्यानकाव्य' (1612-1664), नरपति व्यास द्वारा रचित 'नल-दमयंती' (1625), मुकुंद सिंह द्वारा रचित 'नलचरित' (1641) आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

7.4 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ

सूफी कवियों ने अपनी साहित्यिक साधनाओं द्वारा लोकरंजक और लोकमंगल की आवश्यकताएं पूर्ति की है। इसी कारण उनका साहित्यिक महत्व संत काव्य से अधिक माना गया है। नीचे इस काव्य परंपरा की प्रमुख विशेषताओं को लिपिबद्ध किया गया हैं-

क) प्रेम का महत्व : सूफी कवियों की प्रमुख विशेषता प्रेम का स्वच्छंद उद्देग को माना जाता है। इन कवियों ने विरह को प्रेम का लक्षण माना है। प्रेम उनके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है। लेकिन इस मार्ग को सूफी कवियों ने इतना आसान नहीं माना। सूफी दर्शन में लौकिक प्रेम की स्वीकृति है, यह प्रेम ईश्क मिजाजी से ईश्क हकीकी की ओर ले जाता है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है-

'मानुस प्रेम भयेउ बैकुंठी

नाहिं ट के दार एक मुठी।'

यहाँ साधक स्वयं को प्रेमी और परमात्मा को प्रियतम समझता है।

ख) **समन्वय की भावना :** सूफी कवियों ने समसामयिक संस्कृति को जीवन मूल्य और जीवन भक्ति के रूप में स्थापित कर आधुनिक भारत की मानसिकता की नींव रखी। जिसमे ईश्वर और मानव का, भक्ति और प्रेम का, भारतीय और सूफी पद्धति का समन्वय देखने को मिलता है। भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न त्यौहारों, पर्वों आदि को इन कवियों ने अपने तरीके से फारसी पद्धति में समन्वय कर सबको मोहित किया है। पुराणों तथा इतिहास के पात्रों से युक्त यह प्रेमाख्यान मूल रूप से इतिहास और कल्पना का भी सुन्दर समन्वय है।

ग) **रहस्यवाद :** सूफी काव्य में भी संतों की तरह रहस्यवाद का झलक देखने को मिलता है। दोनों में फर्क बस यही है संत काव्य का रहस्यवाद शुष्क और नीरस है, मगर सूफी रहस्यवाद मिथ्या न होकर अव्यक्त सत्ता को व्यक्त करनेवाला रस से युक्त है। निर्गुण कवि कबीरदास की ही तरह जायसी के काव्य में भी रहस्यवाद का रमणीय रूप स्पष्ट है।

घ) **प्रकृति का रागात्मक चित्रण :** सूफी कवियों ने प्रकृति का रागात्मक चित्रण किया है। इन कवियों ने खुदा के सौन्दर्य को सृष्टि के सौंदर्य के रूप में देखा है। ये लोग सम्पूर्ण प्रकृति को खुदा के नूर की अभिव्यक्ति माना है। प्रकृत अर्थ में इन सूफी कवियों ने पहली बार प्रकृति का भावपूर्ण और स्वतंत्र चेतना के रूप में चित्रण किया है–

'बरसै मेघा झकोर–झकोरी
मेरी है नैन छुवै जस ओरी।'

ङ) **विरह की अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन :** सूफी काव्यों में उल्लेखित प्रेम विरह–प्रधान है। प्रेमी साधक परमात्मा के वियोग में तड़पता रहता है। पद्मावत से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

'यह तन जारौं छार कै, कहौं
की 'पवन उड़ाव'।
मकु तेही मारग उड़ी परै, कट
धरै जहाँ पाव।।'

उनके विरह आध्यात्मिक गुणों से संचालित है।

च) **गुरु का महत्व :** निर्गुण धारा के संतों की तरह सूफी कवियों ने भी गुरु को सर्वोपरि तथा ईश्वर–प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं। गुरु यहाँ मार्गदर्शक है। जायसी ने गुरु महत्वा को प्रमुखता से स्वीकारते हुए कहा है–

'गुरु सुवा जेहि पंथ देखावा।
बिन गुरु जगत को निर्गुण पावा।।'

छ) **शैतान की अवधारण :** शैतान की अवधारण सूफी कवियों की मौलिक देन है। यह शैतान भारतीय दर्शन की 'माया' है, जो आत्मा–परमात्मा के मिलन में अवरोध उत्पन्न

करती है। सूफी काव्य में यही शैतान प्रेम-मार्ग की बाधक तत्व है।

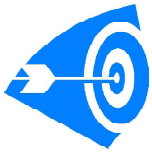
ज) प्रबंध कल्पना : हिंदी के प्रेमाख्यान परंपरा में रचित यह काव्य मूलत: प्रबंधात्मक शैली में लिखा गया है। यहाँ कथात्मक तत्वों की प्रमुखता और प्रचुरता है। ये कवि लौकिक एवं अलौकिक प्रेम-कथाओं को लेकर उनके माध्यम से जीव एवं ब्रह्म के प्रेम की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की है।

झ) भाषा : प्रेमाख्यान काव्य की भाषा प्राय: राजस्थानी और अवधी है। साथ ही साथ भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की बहुलता देखने को मिलता है। इन काव्यों की शैली के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, क्योंकि जहाँ जायसी की शैली में गंभीरता एवं प्रौढ़ता है, वही अन्य कवियों में उसका अभाव तथा अपरिपक्वता के दर्शन होते हैं।



7.5 सारांश

हिंदी साहित्य के निर्गुण मार्गी सूफी काव्यधारा का काव्य मूलत: प्रेम की पीर की अभिव्यंजना है। जहाँ साधक अपने परमात्मा ब्रह्म की खोज में भटकता रहता है। साधारणत: इस धारा के अधिकांश कवि मुस्लिम थे, जिन्होंने हिन्दूओं के घरों में प्रचलित लोक कथा को अपना आधार बनाया। सामान्य भावों को सूफी कवि ने किसी संप्रदाय, जाति, वर्ग में भेद न रखकर अपनी साहित्य की एक धारा का प्रचलन किया जहाँ स्वच्छंद प्रेम तथा उस प्रेम के एकान्तिक और विपत्तिजनक साधनाओं को महत्व दिया गया। परम्परा और युग धर्म के समन्वय से ही सूफी रचनाकारों की कविता कालजयी एवं कलामयी हो उठी है। प्रेम की सरसता एवं जनधर्मिता के कारण ही यह काव्य लोगों तक पहुँचा और साहित्य की एक नयी धारा बनकर रह गया।



7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : नायक की विरह को प्रमुखता देना, फ़ारसी-मसनवियों की भांति प्रेमाख्यान काव्यों में चित्रित प्रेम-चित्रण का लोकबाह्य और आदर्शात्मक रूप, कथा के प्रारंभ में ईश्वर-स्तुति, पैगंबर की वन्दना तथा राजा की प्रशंसा आदि के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काव्य धारा को फारसी-मसनवी शैली पर आधारित घोषित कर दिया।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए **'सूफी काव्य परंपरा और इस संप्रदाय के प्रमुख कवि'** को ध्यान से देखें।



7.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहबाद।



7.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. सूफी शब्द का अर्थ क्या है?
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी काव्य परंपरा के प्रथम कवि किसको स्वीकार किया है?
3. सूफी काव्य परंपरा के चार कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. सूफी शब्द की व्युत्पत्ति पर आलोचना करते हुए सूफी काव्य धारा के ऊपर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
2. सूफी काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
3. सूफी काव्य-परंपराओं का उल्लेख करते हुए जायसी की भूमिका पर अपना मत व्यक्त कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 8 : कृष्ण काव्य

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 कृष्ण काव्य का सामान्य परिचय

8.4 कृष्ण काव्य परंपरा

8.5 कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- 8.5.1 कृष्ण के लीला पुरुषोत्तम रूप की स्थापना
- 8.5.2 वात्सल्य रस का विषद वर्णन
- 8.5.3 प्रेम का जनतांत्रिक रूप
- 8.5.4 भ्रमरगीत काव्य परंपरा
- 8.5.5 स्त्री मुक्ति की अभिव्यक्ति
- 8.5.6 भक्ति भावना
- 8.5.7 काव्य का स्वरूप
- 8.5.8 भाषा
- 8.5.9 रस
- 8.5.10 छन्द एवं अलंकार

8.6 अष्टछाप

8.7 सारांश

8.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

8.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

8.10 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- कृष्ण काव्य से तात्पर्य और इसके स्वरूप से अवगत होंगे।
- कृष्ण काव्य परम्परा को जान सकेंगे।
- कृष्ण काव्य की प्रमुख विशेषताएँ अथवा प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करेंगे।

8.2 प्रस्तावना

भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य की साधना में कृष्ण आख्यान की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। वेद, पुराण, गीता–भागवत आदि में कृष्ण के चरित्र को अद्वितीय रूप में रचना की

गयी है। महाभारत में ऐसे अनेक स्थल देखने को मलते हैं, जहाँ कृष्ण की पूजा किए जाते हैं। इसी आधार पर जयदेव के 'गीत-गोविंद' से होता हुआ विद्यापति तक इसका व्यापक प्रभाव नजर आते हैं।

भक्तिकालीन सगुण भक्तिधारा में सबसे महत्वपूर्ण स्थान भगवान श्री कृष्ण का ही है। इस काव्य में निहित विशेषताएँ, स्वरूप और इसकी परम्पराओं के विकास पर इस इकाई में चर्चा की गयी है।

8.3 कृष्ण काव्य का सामान्य परिचय

भक्ति काल में जिन भक्त कवियों ने विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण की उपासना अथवा आराध्य की है, उन्हीं के द्वारा कृष्ण को लक्ष्य करके लिखा गया काव्य ही 'कृष्ण काव्य' अथवा कृष्णाश्रयी, शाखा के काव्य कहलाते हैं। इस परम्परा में कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं तथा अन्य लीलाओं का मनोहारी चित्रण किया है, जो बहुत ही आकर्षक और सरसता के साथ वर्णन हुआ है। इस काव्य परम्परा में वल्लभाचार्य के 'पुष्टिमार्ग' संप्रदाय का विशेष महत्व रहा है। इस पुष्टि के अनुसार प्रेम और अनुराग के फल स्वरूप ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करने के बाद भक्ति की अनुभूति होती है।

कृष्ण काव्य धारा के प्रमुख कवियों में से सूरदास, नंददास, मीरा, रसखान आदि का नाम प्रमुख है। भक्तिकालीन सगुण भक्तिधारा में कृष्ण काव्य का विशेष महत्व है। इस परम्परा में कवियों ने कृष्ण को ही सर्वप्रमुख मानते हैं और उन्हीं से यह दुनिया जुड़ा हुआ है, ऐसा स्वीकार करते हैं।

8.4 कृष्ण काव्य परंपरा

कृष्ण-काव्य परम्परा की नींव ऋग्वेद से मानी जाती है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, महाभारत आदि पौराणिक ग्रंथों में कृष्ण चरित्र का पर्याप्त उल्लेख मिलता हैं। संस्कृत काव्यों में कृष्ण-लीलाओं से संबंधित सबसे प्रथम उल्लेख अश्वघोष के 'ब्रह्मचरित' में मिलता है। इसके बाद हाल-चरित 'गाहासतसई' (गाथासप्तशती) में मिलता है। यह ग्रन्थ श्रृंगार भावना से ओतप्रोत है। कृष्ण काव्य की अधिक रचना बारहवीं शताब्दी में नजर आते हैं। बोपदेव की 'हरिलीला' वेदान्तदेशिक की 'यादवाभ्युदय' आदि। मगर आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण-काव्य का प्रारंभ मैथिल-कोकिल विद्यापति से माना जाता है। राधा-कृष्ण के प्रेम-लीलाओं का चित्रण विद्यापति ने अपने पदावली में की है। विद्यापति का पदावली यद्यपि राजस्तुतिपरक भी है, मगर इसमें मुख्यत: भक्ति और श्रृंगार का सुन्दर समन्वय मिलता है। विद्यापति का कृष्ण चरित्र से संबंधित श्रृंगार का काव्य प्रेमानुभूति की सहज प्रक्रिया है, जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता।



महत्वपूर्ण बिंदु

- आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारंभ विद्यापति से माना जाता है।
- विद्यापति को मैथिल-कोकिल नाम से भी जाना जाता है।

मध्ययुग में कृष्ण भक्ति का प्रचार ब्रजमंडल में बड़े उत्साह के साथ हुआ। इस सन्दर्भ में वल्लभ, निम्बार्क, राधावल्लभ, हरिदासी, चैतन्य संप्रदाय का विशेष योगदान रहा है। वल्लभ संप्रदाय के काव्य में कृष्ण का स्वरूप पूर्ण और वही पुरषोत्तम परमब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित हुए है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय भक्ति संप्रदाय से विकसित अष्टछाप की कवियों ने इन काव्य-परम्परा को एक व्यापक रूप दिया। सूरदास इन कवियों में से प्रमुख थे। उनके काव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति ही है। 'भागवत' पुराण को उपजीव्य मानकर उन्होंने राधा-कृष्ण के लीलाओं का वर्णन 'सूरसागर' में किया है। उनका वात्सल्य वर्णन भी अद्भुत और आकर्षक है। उनके भ्रमरगीत में वर्णित श्रृंगार की भावना केवल ऐन्द्रिक सुख को ही व्यक्त नहीं करतीं, वरण वे उनके ह्रदय की पवित्रता, निश्छलता और उदारता का भी परिचायक है। परमानंददास ने वल्लभाचार्य से प्रेरणा लेकर कृष्ण काव्य की धारा को आगे ले जाते हुए बाललीला से संबंध पदों की रचना की। इसी धारा में नंददास ने भी 'विरहमंजरी' और 'रुपमंजरी' की रचना की। 'विरहमंजरी' में कृष्ण के वियोग में एक ब्रजवासी की विरह दशा का वर्णन है, तो 'रुपमंजरी' में रुपमंजरी के प्रति कृष्ण प्रेम को जार भाव से निरुपित करते हुए दुति इंदुमती के सहाय्य का वर्णन किया गया है। नंददास का 'भंवरगीत' परिपक्व दर्शनज्ञान, विवेक-बुद्धि, तार्किक शैली और कृष्णभक्ति का परिचायक काव्य है। जिसके पूर्वार्द्ध में गोपी-उद्धव संवाद है और उत्तरार्द्ध में कृष्ण-प्रेम में गोपियों की विरह दशा का वर्णन। निम्बार्क संप्रदाय में कृष्ण के वामांग में सुशोभित राधा के साथ कृष्ण की सुशोभित रूप का वर्णन है। राधावल्लभ संप्रदाय में भी कृष्ण-पदों की रचना हुई है, मगर इस संप्रदाय में राधा को प्रमुख स्थान दिया गया है। यहाँ कृष्ण का वृंदावनविहारी, मथुरावासी और द्वारकावासी के रूप में वर्णन मिलता है। हरिदासी सम्प्रदाय में कृष्ण निकुंजविहारी और सर्वव्यापी है। इन कवियों के काव्य में श्रृंगार के सहज रूपों का वर्णन है। गौड़ीय अथवा चेतन्य संप्रदाय में भी कृष्ण का वर्णन ब्रज के गोकुल लीलाओं सहित वर्णन किया गया है। कृष्ण-काव्य परम्परा में मीराबाई का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। मीरा का काव्य उनके ह्रदय से निकले सहज प्रेमोच्छवास का साकार अभिव्यक्ति है। मीरा कृष्ण प्रेम में पागल थी और उसी आकुलता का ही परिणाम मीरा की पदावली हैं। वल्लभ संप्रदाय से दीक्षा लेकर रसखान ने भी कृष्ण भक्ति से संबंधित काव्य की रचना की है। जिसका प्रमुख स्वर श्रृंगार और वात्सल्य है।

8.5 कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

कृष्ण काव्य में निहित प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नांकित रूप में देख सकते हैं–

8.5.1 कृष्ण लीला के पुरुषोत्तम रूप की स्थापना

इस धारा के काव्य में अपने आराध्य श्री कृष्ण का लोकरंजक एवं माधुर्य रूपों का वर्णन किया गया है। इन लीलाओं के माध्यम से कवि जनगण को आनंद प्रदान करते थे। कृष्ण की वात्सल्य वर्णन, बाल गोपालों के साथ सखा रूप स्थापित करती लीलाएँ, गोपियाँ और राधा के साथ रचनेवाली प्रेम–चातुरी एवं माधुर्य का वर्णन पुरे काव्य में उपलब्ध है।

8.5.2 वात्सल्य रस का विषद वर्णन

माता–पिता की जो ममता संतान पर बरसती है उसे 'वात्सल्य' कहते हैं। कृष्ण काव्य के कवियों ने वात्सल्य का अद्भुत चित्रण करते हुए कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया है। कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा गमन के समय तक की लीलाओं का ऐसा मधुर चित्रण यहाँ उपलब्ध हैं, जिसे देखकर लोगों का मन आहलादित हो उठता है। यशोदा और नन्द की गहन अनुभूतियों का अत्यंत सहज और स्वाभाविक तरीके से प्रकाशमान हो उठे हैं। एक उदाहर प्रस्तुत है–

'सोभित कर नवीनत लिए।
घुटुरनि चालत रेणु तन मंडित, मुख दाढ़ी लेप किए।'

8.5.3 प्रेम का जनतांत्रिक रूप

कृष्ण भक्त कवियों की प्रेम का स्वरूप जनतांत्रिक है। इन कवियों ने किसी अन्य धारा के भक्त कवियों की तरह प्रतीकात्मक और श्रद्धा से संयमित प्रेम को नहीं अपनाया। जैसे–

'बुझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी देखि नहीं कहूं ब्रज खोरी।।
सुनत रहति स्त्रवननि नन्द ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी।।'

8.5.4 भ्रमरगीत काव्य परंपरा

कृष्णा काव्यधारा के सभी कवियों ने भ्रमरगीत परंपरा को अपनाया। जिसका मूल आधार कृष्ण के सखा उद्धव और गोपियों का संवाद है। कृष्ण भक्त कवियों ने

भ्रमरगीत परंपरा के द्वारा गोपियों और उद्धव के तर्क-वितर्क के माध्यम से सगुण-निर्गुण की बाते कही हैं। जहाँ इन कवियों ने निर्गुण की तुलना में सगुण को श्रेष्ट माना है। निर्गुण ब्रह्म की स्थिति पर व्यंग्य कसते हुए गोपियाँ कहती हैं-

'निरगुन कौन देस को बासी।
मधुकर, कहि समुझाय! सौंह दे, बुझति साँच न हांसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, कही रस में अभिलाषी।।'

8.5.5 स्त्री मुक्ति की अभिव्यक्ति

तत्कालीन समय में जब स्त्रियाँ घर से भी नहीं निकालती थी, ऐसे समय में गोपियों को वह भी विवाहित; कृष्ण के प्रेम में व्याकुल होकर घर से निकाल जाती है, उनके साथ रास रचाती है, यह परम्परा उस समय में स्त्रियों के लिए बहुत बड़ी बात थी। यह एक ऐसी परम्परा थी जहाँ मीराबाई जैसी कवयित्री भी लोकलाज त्याग कर स्त्री मुक्ति का मुखर स्वर बनती है। उन्होंने तो स्पष्ट रूप से कह दिया कि-

'मेरो तो गिरिधर गोपाल दूसरों न कोई,
जाके सर मोर मुकुट मेरो पति सोई।'

8.5.6 भक्ति भावना

कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति को पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों के आधार पर अपना आराध्य श्री कृष्ण को स्वीकारा है। उनकी भक्ति सगुण भक्ति है। इन कवियों ने कृष्ण को दास्य, सख्य, माधुर्य तथा वात्सल्य भाव से उनकी आराधना कर अपने काव्य की रचना की हैं। समस्त कष्टों का निवारक आराध्य कृष्ण के भक्ति में तल्लीन होकर सूरदास कहते हैं-

'चरण कमल बन्दौ हरि राई।
जाकी कृष्ण पंगु गिरी लांघे, अंधे को सबकुछ दरसाई।'

8.5.7 काव्य का स्वरूप

कृष्ण काव्य असल में लोकरंजक कृष्ण के प्रति प्रेम की गहन अनुभूति है। अपनी अनुभूति को इन कवियों ने मुक्तक पदों में व्यक्त किया है। मूल रूप से कृष्ण काव्य मुक्तक और गेय काव्य है। इन कवियों की भाषायों में संगीतात्मकता का गुण नजर आते हैं। इन पदों में मुक्तक किस्म का प्रबंध भी दिखाई पड़ता है, इसलिए इन्हें 'लीला पद' की विशिष्ट संज्ञा भी दी गयी है।

8.5.8 भाषा

कृष्ण काव्य के कवियों ने मूलत: ब्रज को ही अपना आधार माना। अर्थात ब्रज भाषा के माध्यम से ही इन कवियों ने अपना सम्पूर्ण काव्य की रचना की। सूरदास को ब्रजभाषा का पहला कवि माना जाता है, जिन्होंने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

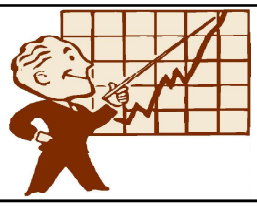
'अंखिया हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस रांची ये बतियां सुनी रूखी।।'

8.5.9 रस

कृष्ण काव्य की एक अन्य प्रमुख प्रवृत्ति है रस। इन कवियों ने वात्सल्य और दांपत्य के सन्दर्भ में श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया। संयोग और वियोग श्रृंगार के दोनों पक्षों को प्रमुखता देते हुए इन कवियों ने अपने पदों की रचना की है। कृष्ण काव्य में श्रृंगार और वात्सल्य रस को अधिक प्रमुखता दी गयी है।

8.5.10 छन्द एवं अलंकार

कृष्ण काव्य में छन्द विधान एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इन कवियों ने अपने पदों में दोहा, कवित्त, सवैया आदि छंदों का प्रयोग अधिक किया है।



अपनी प्रगति जांचें-

प्रश्न 1. अष्टछाप किसे कहते हैं? कृष्ण भक्ति काव्य में अष्टछाप की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

8.6 अष्टछाप

अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में गोसाई विट्ठलनाथ द्वारा की गयी थी। विट्ठलनाथ अपने पिता द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' के कवियों में से आठ कवियों का एक समूह निकाला और अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के कवियों का नाम इस प्रकार हैं - सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। जिनमें से सूरदास सबसे प्रमुख थे। इन कवियों ने गोवर्धन में श्रीनाथ मंदिर में अष्ट भाग विधि से सेवा करते थे। कहा जाता है ये आठों ब्रज के निवासी थे और श्रीनाथजी के समक्ष गान रचकर गाया करते थे। उनके गीतों के संग्रह को 'अष्टछाप' कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है आठ मुद्राएँ।



8.7 सारांश

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य परम्परा भक्तिकाल की एक सशक्त धारा है। इस धारा में विष्णु के अवतार कृष्ण की आराधना की जाती है। इस धारा के कवियों के लिए कृष्ण ही सबसे श्रेष्ठ और सर्वप्रमुख है। इस धारा के काव्य में मूलत: कृष्ण के विभिन्न लीलाओं का वर्णन कर लोगों को आकर्षित किया जाता था। मूल रूप से कृष्ण काव्य में सगुण कृष्ण को महत्व देते हुए उनका वर्णन कभी ईश्वर के रूप में, कभी सखा के रूप में, कभी प्रेमी के रूप में किए जाते थे। इस परम्परा में भगवान कृष्ण के बाल लीलाओं का और भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन बहुत ही आकर्षक और प्रभावशाली ढंग हुआ है। जिससे यह मालूम पड़ता है कि इन भक्त कवियों अथवा कृष्ण भक्ति शाखा के सम्प्रदायों के लिए कृष्ण सबसे शक्तिमान और श्रेष्ठ थे।



8.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : विट्ठलनाथ अपने पिता द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' के कवियों में से आठ कवियों का एक समूह निकाला और अष्टछाप की स्थापना की। अष्टछाप के कवियों का नाम इस प्रकार हैं – सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। जिनमें से सूरदास सबसे प्रमुख थे। अधिक जानने के लिए पढ़ें '**अष्टछाप**'।



8.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास– राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका– हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका– प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



8.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. 'अष्टछाप' की स्थापना कब और किसने की थी ?
2. 'अष्टछाप' के कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति धारा की प्रमुख विशेषताओं को उल्लेख कीजिए।
2. कृष्ण भक्ति संप्रदाय से आप क्या समझते हैं- टिप्पणी कीजिए।
3. कृष्ण काव्य का सामान्य परिचय देते हुए इसके प्रमुख कवि और उनके काव्यों पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।

4 अष्टछाप का तात्पर्य क्या है ?

*** ***** ***

इकाई 9 : कृष्ण काव्य परम्परा में सूरदास

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 हिंदी कृष्ण काव्य परम्परा और सूरदास का काव्य

9.4 सूरदास के काव्य में सहृदयता और भावुकता

9.5 सारांश

9.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

9.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- कृष्ण–काव्य परम्परा में सूरदास के महत्व को जान पाएंगे।
- कृष्ण काव्य परम्परा से संबंधित विभिन्न दृष्टिकोणों से परिचय प्राप्त करेंगे।
- सूरदास के कृष्ण–काव्य में निहित सहृदयता और भावुकता से अवगत होंगे।

9.2 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य के इतिहास में उल्लेखित भक्ति काल के सगुण भक्तिधारा की प्रमुख उन्नायक सूरदास कृष्ण–भक्ति शाखा के प्रमुख कवि थे। सूरदास को इस धारा के प्रतिनिधि कवि माना जाता है। कृष्ण–भक्ति से संबंधित इन काव्यों की प्रारंभिक इतिहास लंबी है।

प्रकृत अर्थ में, कृष्ण–भक्ति काव्य भारतीय लोक जीवन की एक ऐसी धारा है जिसमें आनंद की लहरे झूम उठती है। सहज, सरल, प्रवाहमयी भाषा और वाक–चातुर्य से भक्ति और लीला की जो समन्वय इस धारा के काव्य में नजर आते हैं, वह वर्तमान में भी लोगों को मोहित करते हैं। कृष्ण विषयक भावों से परिपूर्ण सूर ने अपनी पूर्ववर्ती काव्य–परम्परा का अनुसरण करते हुए कृष्ण काव्य का एक ऐसा संसार रचा, जिसकी छाप अन्य कवियों पर अनायास ही पड़ने लगे थे।

9.3 हिंदी कृष्ण काव्य परम्परा और सूर का काव्य

कृष्ण काव्य परम्परा में सूर के आगमन से पहले जयदेव ने राधा–कृष्ण विषयक भक्ति और श्रृंगार से संबंधित 'गीतगोविन्द' लिखा। इसके पश्चात चौदहवीं शताब्दी में विद्यापति ने राधा–

कृष्ण से जुड़े पदों की रचना की। सूर ने इन परम्पराओं को आगे बढ़ाते हुए कृष्ण काव्य का ऐसा मिठास लोगों में बांटा जिससे कृष्ण काव्य की एक महान परम्परा प्रशस्त हुई।

सूर के काव्य में कृष्ण के कई रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। मूल रूप से सूरदास ने भक्ति, प्रेम-माधुर्य और वात्सल्य भावनाओं को जिस सरसता के साथ वर्णन किया है, वह लोगों के बीच आज भी प्रसिद्ध है। सूर ने कृष्ण के जन्म, शैशव, साथियों से विनोद, बाल-लीला, गोपियों के साथ केलि-क्रीड़ा, असूर वध आदि प्रसंगों को मुक्तक शैली में मनोहारिता के साथ वर्णन किया है। सूर का काव्य गीतात्मक तथा मन को आह्लादित करनेवाला है।

सूरदास ने कृष्ण-काव्य की शास्त्रीय परम्परा के लोक-संस्कृति का अवगाहन कर जो कृष्ण-काव्य रचा उन्हीं के साथ कृष्ण काव्य की एक दीर्घ परम्परा चलने लगी। गोसाई विट्ठलनाथ द्वारा संयोजित अष्टछाप के कवियों में सूर के साथ-साथ परमानंददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास ने इस परम्परा को एक व्यापक रूप दिया। हालाँकि इनमें से सबसे प्रमुख सूरदास और उनके बाद नंददास को ही माना जाता है। उल्लेखित कवियों ने ब्रजभाषा में कृष्ण-भक्ति की लीलाओं का रसपान लोगों को ब्रज भाषा में कराया। कृष्ण काव्य की परम्परा में मीरा का नाम भी सम्मान के साथ लिया जाता है। कृष्ण के प्रति समर्पण और उनके काव्य की मार्मिक संवेदना ने मीरा को एक अलग जगह पर रख दिया। उनके काव्य में दैन्य और माधुर्य भाव की प्रमुखता विशेष रूप से नजर आती है। गिरिधर-गोपाल, कृष्ण प्रेम में आतुर मीरा की प्रेम एकनिष्ठ है। सन्यासी की भांति, योगिन बनकर समय और समाज व्यवस्था के समक्ष मीरा चुनौती के रूप में खड़ी हुई थी। गुजराती, राजस्थानी और ब्रज के मिश्रित रूप मीरा के भाषा की विशेषता है। कृष्ण भक्ति में इन कवियों के काव्य वैभव के साथ नरोत्तमदास, गोविन्दस्वामी, हरिदास और हितहरिवंश आदि भी प्रमुखता के साथ उभरे।

रसखान कृष्ण काव्य परम्परा के संप्रदाय निरपेक्ष कवि थे। उन्होंने कृष्ण प्रेम की उत्कट और उदात्त छवि अपने काव्यों के माध्यम से अंकित किया। इसी परम्परा में रहीम, ध्रुवदास, सुन्दरदास, धरमदास, रसिकदास आदि का भी नाम आता है। इन कवियों पर सूरदास की कविताओं का सीधा असर देखने को मिलता है। भक्तिकाल के अतिरिक्त रीतिकाल में भी कृष्ण भक्ति परम्परा से संबंधित कविताओं की सृजन हुई, जिसका मूलाधार सूर और ब्रज भाषा ही है

आधुनिक काल में भी कुछ नए रूप और रंग के साथ कृष्ण काव्य रचा गया। लेकिन इसमें परम्परागत रूप अथवा भाव और भक्ति की वह गहराई दिखाई नहीं पड़ती। उदाहरण के तौर पर जगन्नाथ दास रत्नाकर की 'उद्धव शतक' धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' आदि।

कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर ने कृष्ण के लीला रूप, सौंदर्य और प्रेम का जैसा चित्रण किया है, वह कृष्ण-काव्य परम्परा का सबसे सृजनशील स्वर है। सारस संगीत और गीतात्मक सौन्दर्यबोध से लिखा गया सूरदास का बाललीला, भ्रमरगीत तथा वात्सल्य का जो अनुपम सृष्टि है, उन सबमें परम्परागत लोक-विश्वास, हर्ष और उत्सव की संवेदना विद्यमान है। कृष्ण काव्य परम्परा में सूर का काव्य प्रतिनिधि काव्य है। इस सन्दर्भ में 'सूरसागर' को लेकर आचार्य शुक्ल द्वारा कही गयी एक कथन प्रस्तुत है-



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. हिंदी कृष्ण भक्ति परंपरा में सूरदास की महत्व पर प्रकाश डालिए।

"बल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास ने श्रीमद्भागवत् की कथा को पद में गाया।... कृष्ण-जन्म से लेकर मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में वर्णन है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बांध दी है। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होनेवाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती हैं। अत: सूरसागर किसी चली आती हुई गीत-काव्य परम्परा का, चाहे मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास-सा प्रतीत होती है।" सूर के संबंध में शुक्ल द्वारा कहा गया कथन सही ही है कि उन्होंने बंद आँखों से वात्सल्य और श्रृंगार का जो चित्रण किया है, वह कृष्ण-काव्य परम्परा के किसी भी कवि न कर सका। कृष्ण के जीवन के विविध प्रसंगों का चित्रण करते हुए सूर की काव्य-दृष्टि की सहृदयता और वचन विदग्धता देखते ही बनती है। जीवन की नवीन उद्भावना और भावपक्षों की प्रशंसा करते हुए कही-कही सूर को उन्होंने तुलसी से भी श्रेष्ट माना है। सूर का काव्य लोकजागरण की भावनाओं का काव्य है। सूर की गोपियाँ उद्दात्त प्रेम की चित्रण को प्रस्तुत करती है। उनके प्रेम में प्रतिबद्धता है, जो सामंती समाज की जाति, वर्ण और संकीर्णता के बंधन को तोड़कर मानव प्रेम का पथ प्रसस्थ करती है। नारी स्वतंत्रता का जैसा चित्रण सूरदास ने किया है ऐसा भक्तिकाल के किसी भी कवि ने नहीं किया है। दूसरी ओर गीतिकाव्य की सृजनात्मकता सूर के काव्य का विशिष्ट पक्ष है। सूर ने अपने गीतात्मक काव्य में भाव और विचार का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। सूर ने अपनी प्रतिभा से उस परम्परा को सृजनात्मक आधार प्रदान किया। लोक-जीवन से काव्य भाषा का स्त्रोत ग्रहण करते हुए मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग सूर ने जिस प्रकार किए हैं, वह बहुत ही आकर्षक है। भाषा, वचन-विदग्धता और सहृदयता का जैसा प्रयोग सूर ने किया है वह सच में विरल है।

9.4 सूरदास के काव्य में सहृदयता और भावुकता

सहृदयता मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है और भावुकता का संबंध कल्पना के साथ जुड़ा हुआ है। सूर काव्य में कृष्ण के जन्मोत्सव, बाल-भाव, राधा-कृष्ण और गोपियों का स्वाभाविक प्रेम में सहृदयता का स्वरूप अलग-अलग अनुभूतियों के साथ उभर कर सामने आया है। जैसे-

'हरि अपने आंगन कुछ गावत।

तनक-तनक चरननिं सौ नाचत मनहीं-मनहीं रिझावत।'

बाल मनोविज्ञान के साथ माँ के हृदय की कोमलता का जिस भावात्मक रूप-चित्रण सूरदास ने किया है, वह बड़ा ही मोहक है। सूरदास के काव्य में निहित सहृदयता का स्वाभाविक अभिव्यक्ति कृष्ण-राधा के प्रेम और विरह में दिखाई पड़ती है। सूर के भावावेग के क्षणों में कल्पना जो

निखरकर सामने आयी है, उसमें सूर की संवेदनाशीलता का प्रमाण मिल जाता है। उद्धव को देखकर गोपियों के मन में अनगिनत कल्पना के भाव आते हैं। कभी वे उनके गोकुल में आने का स्वागत करती हैं तो कभी उन पर खीज जाती हैं। उद्धव के माध्यम से कृष्ण पर व्यंग्य-बाण चलाती हुई कहती हैं-

'उधो भली करी तुम आए।
ये बातें कही कहि या दु:ख में ब्रज के लोग हँसाए।'

उनके काव्य में सहृदयता और भावुकता के साथ-साथ चतुरता और वाग्विदग्धता का सुन्दर समन्वय नजर आते हैं। उनकी चतुरता, व्यावहारिक समझ, वाणी की विदग्धता और वक्रता ही उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।

प्रकृत अर्थ में सूरदास एक महान कवि है। उनके काव्य की सहृदयता और वाग्विदग्धता का विवेचन एक मनोहारी कर्म है। उद्धव के शास्त्र ज्ञान के सामने गोपियों का लोक-अनुभव सूर ने जिस सहृदयता के साथ वर्णन किया है, वही उनकी वाक-चातुर्य का प्रमाण है।



9.5 सारांश

हिंदी में कृष्ण-काव्य परम्परा के उद्भावक मैथिल कोकिल विद्यापति को माना जाता है। राधा-कृष्ण से संबंधित उनके काव्य ब्रज और मैथिली की अनुपम सृष्टि है। कृष्ण से संबंधित लीलाओं का गुण-गान करके सूर ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसी धारा में बहता हुआ अष्टछाप तथा अन्य कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाता गया। इस धार में सबसे ज्यादा बहनेवाली काव्य सूर का काव्य है। जिन्होंने कृष्ण का वात्सल्य, बाललीला, भ्रमरगीत आदि से संबंधित काव्य लिखकर इस परम्परा को समृद्ध किया। हिंदी साहित्य में सूरदास ने जयदेव और विद्यापति जैसा परम्परागत प्रचलित धारा में ही कृष्ण मथुरागमन, गोपियों का विरह, कृष्ण प्रेम में व्याकुल होना, पुरूषों की भ्रमर वृत्ति आदि का ऐसा चित्रण किया जो लोगों को अधिक आकर्षक और लचीला लगने लगा। ब्रज भाषा में रचित सूर का काव्य उनकी वचन-विदग्धता और सहृदयता का महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जो भक्ति, रीति और आधुनिक कवियों पर भी अपना छाप छोड़ता है।



9.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : सूर के काव्य में कृष्ण के कई रूपों का चित्रण देखने को मिलता है। मूल रूप से सूरदास ने भक्ति, प्रेम-माधुर्य और वात्सल्य भावनाओं को जिस सरसता के साथ वर्णन किया है, वह लोगों के बीच आज भी प्रसिद्ध है। सूर ने कृष्ण के जन्म, शैशव, साथियों से विनोद, बाल-लीला, गोपियों के साथ केलि-क्रीड़ा, असूर वध आदि प्रसंगों को मुक्तक शैली में मनोहारिता के साथ वर्णन किया है।

अधिक जानने के लिए पढ़ें **'हिंदी कृष्ण काव्य परंपरा और सूर का काव्य'**।



9.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



9.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. गीतगोविंद के रचनाकार कौन है?
2. सूरदास की किन्हीं दो रचनाओं का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर का स्थान स्पष्ट कीजिए।
2. कृष्ण-काव्य परम्परा में सूरदास की भूमिकाओं को रेखांकित करते हुए- इसके उद्भव और विकास पर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
3. सूरदास के पूर्ववर्ती और परवर्ती कृष्ण-काव्य परम्परा के प्रमुख कवि और उनके काव्यों का सामान्य परिचय दीजिए।
4. सूरदास की वाक-चातुर्य और सहृदयता पर एक टिप्पणी लिखिए।

*** ***** ***

इकाई 10 : कृष्ण भक्ति और विभिन्न संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 वल्लभ संप्रदाय
10.4 निम्बार्क संप्रदाय
10.5 राधावल्लभ संप्रदाय
10.6 सखी संप्रदाय
10.7 चैतन्य संप्रदाय
10.8 संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण-काव्य
10.9 सारांश
10.10 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
10.11 अधिक जानने के लिए पढ़ें
10.12 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- कृष्ण भक्ति से संबंधित विभिन्न संप्रदायों को जानेंगे।
- कृष्ण काव्य परम्परों में उन संप्रदायों की भूमिका तथा उनके स्वरूप से परिचित होंगे।
- कृष्ण भक्ति संप्रदाय के प्रमुख कवि और उनके रचनाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

10.2 प्रस्तावना

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख संप्रदायों का प्रचार और प्रसार ब्रजमंडल के क्षेत्र में व्यापकता से पाया जाता है। यहाँ संप्रदाय का अर्थ वस्तुत: वह नहीं है जो आज प्रचलित है और जो संकुचित सांप्रदायिकता का सूचक है। यहाँ संप्रदाय का अर्थ किसी विशिष्ट चिंतन पद्धति, दार्शनिक परम्परा अथवा उस चिंतन को अथवा परम्परा को विकसित करनेवाला एक शाखा से है। इस दृष्टि से नीचे उन संप्रदायों का उल्लेख हैं, जिससे भक्ति काल के कृष्ण काव्य को जानने में अधिक आसानी होगी।

10.3 वल्लभ संप्रदाय

कृष्ण भक्ति साहित्य में वल्लभ संप्रदाय सोलहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित किया गया था। जिसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत दर्शन है। इस संप्रदाय को कृष्ण भक्ति साहित्य की रीढ़ कहा जाता है।

इस संप्रदाय में भक्ति के तीन मार्ग बतायें जाते हैं- पुष्टिमार्ग, मर्यादा मार्ग और प्रवाह मार्ग। पर वल्लभाचार्य का बल पुष्टिमार्ग पर ही था। 'अनु भाष्य' नामक ग्रन्थ इस संप्रदाय के आधारभूत दार्शनिक ग्रन्थ है। 'अनु भाष्य' की रचना वल्लभाचार्य ने की थी मगर इसे पूर्ण इनके पुत्र आचार्य विट्ठल ने किया था। वल्लभाचार्य के चार शिष्य- कुंभन दास, सूरदास, परमानन्द दास, कृष्ण दास तथा विट्ठलनाथ के गोविंद स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास और नन्ददास को एक साथ अष्टछाप कवि कहा जाता है। गोकुल नाथ की रचना 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' वल्लभाचार्य के शिष्यों पर प्रकाश डालती है तथा इनकी रचना 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' विट्ठल की शिष्य परंपरा पर प्रकाश डालती है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति में किसी प्रकार की साधन अथवा कर्मकांड की अपेक्षा नहीं होती। इस संप्रदाय में कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन भी इसी पुष्टिभक्ति को ध्यान में रखकर ही किया गया है। जहाँ कृष्ण पुरुषोत्तम परमब्रह्म है, जो सत्, चित् और आनंदस्वरूप है। वही सर्वशक्तिमान, भेदरहित, सर्वज्ञ, स्वजातीय-विजातीय धर्मों के आश्रय है। सूरदास इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि थे। जिन्होंने कृष्ण भक्ति की धारा को विशेष रूप से समृद्ध किया। सूरदास को पुष्टिमार्ग का जहाज भी कहा जाता है। 'सूरसागर' और 'साहित्यलहरी' सूरदास की श्रेष्ट कृतियाँ हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य की प्रमुख रचनाओं का नाम इस प्रकार हैं- पूर्व मीमांसा भाष्य, उत्तर मीमांसा भाष्य, श्रीमद्भागवत पुराण की सूक्ष्म टीका, सुबोधिनी टीका, तत्वद्वीप टीका निबंध आदि।

मूलत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य जगत में कृष्ण भक्ति के प्रचार में इस संप्रदाय की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- वल्लभ संप्रदाय को कृष्ण भक्ति शाखा की रीढ़ कहा जाता है।
- 'अनुभाष्य' नामक ग्रन्थ इस संप्रदाय का आधारभूत दार्शनिक ग्रन्थ है।

10.4 निम्बार्क संप्रदाय

कृष्ण भक्ति साहित्य की ब्रजमंडल का निम्बार्क संप्रदाय भी अपना विशेष स्थान रखता का है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक निम्बार्काचार्य है। निम्बार्क के शिष्य 'श्रीनिवासचार्य' ने वेदांत

कौस्तुभ की रचना की और इसी पुस्तक के माध्यम से निम्बार्क संप्रदाय पर प्रकाश पड़ता है।

निम्बार्क ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के लिए दशशलोकी,श्रीकृष्णस्तवराज, प्रपन्नकल्पवल्ली, मंत्ररहस्यषोडशी, वेदान्त पारिजात सौरभ आदि नाम से पांच ग्रंथों की रचना की थी। इनका दार्शनिक सिद्धांत है 'द्वैताद्वैतवाद'। कृष्ण भक्ति से संबंधित संप्रदायों में यह सबसे प्राचीन संप्रदाय है। इस पद्धति में राधा-कृष्ण की युगल उपासना का प्रावधान है।

निम्बार्क संप्रदाय के अन्य कवियों में श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव, परशुरामदेव आदि प्रमुख है। श्री भट्ट को कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करनेवाला, सुकवि, हरिभक्ति का प्रचारक माना जाता है। इनकी रचना 'युगल शतक' में 100 पद हैं, जो ब्रज भाषा में लिखा गया था। हरिव्यासदेव इन्होंने संस्कृत भाषा में 'सिद्धांत रत्नावली' और ब्रज में 'महावाणी' की रचना की। इस संप्रदाय के महान उन्नायकों में से एक हैं हरिव्यासदेव, जिन्होंने संप्रदाय का संगठन नए सिरे से खड़ा किया और इस संप्रदाय की अनेक विच्छिन्न परम्पराओं को पुन:स्थापित किया। निम्बार्क संप्रदाय की गद्दी को ब्रज से सलेमाबाद तक ले जानेवाले व्यक्ति परशुराम देव व्यास ही थे। राजस्थान में निम्बार्क-संप्रदाय का प्रचार करने का श्रेय इन्हीं को जाता है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- सूरदास को पुष्टिमार्ग का जहाज कहा जाता है।

10.5 राधावल्लभ संप्रदाय

कृष्णभक्ति शाखा के संप्रदायों में राधावल्लभ संप्रदाय भी एक प्रमुख संप्रदाय है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे स्वामी हित हरिवंश। जिन्होंने वृन्दावन में राधावल्लभ संप्रदाय की स्थापना 1534 ई. में की थी।

इस संप्रदाय की उपासना का आधार रस है, इसकी उपासना को रसोपासना कहा जाता है। इस संप्रदाय में राधा को कृष्ण से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। इसके मंदिर में कृष्णजी के साथ राधा का विग्रह नहीं होता। श्री कृष्ण के वाम भाग में निर्मित पत्र पर 'श्रीराधा:' शब्द अंकित रहता है। इसे 'गद्दी सेवा' कहा जाता है। नामसेवा, समाज, अष्टयामसेवा, नैमित्तिक उत्सव आदि इस संप्रदाय में स्वीकृत हैं। इस संप्रदाय का प्रमुख मंदिर वृन्दावन में है। गुजरात, राजस्थान, बुंदेलखंड और मध्यप्रदेश आदि में इस संप्रदाय के अनुयायी है। राधा वल्लभ संप्रदाय के आराध्य नृत्य विहार है। इसमें चार तत्व होते हैं- राधा, कृष्ण, वृन्दावन, सहचरी (जीवात्मा)। हित हरिवंश ने राधा सुधानिधि (संस्कृत), यमुनाष्टक (संस्कृत), हित चौरासी (ब्रज) नामक कुछ ग्रन्थ लिखें, जिनमें से 'हित चौरासी' को इस संप्रदाय का आधारभूत ग्रन्थ स्वीकार किया गया है।

इस संप्रदाय के अन्य कवियों में से दामोदर दास (सेवक जी), हरिराम व्यास, चतुर्भुज दास, ध्रुवदास, नागरीदास आदि हैं। इनके काव्यों में राधा-कृष्ण की निकुंज लीलाओं का वर्णन

देखने को मिलता है। राधा के वर्णन में कुछ कवियों के पद अधिक अलंकारिक हो गये हैं। इस सम्प्रदाय में भक्ति के माधुर्य रस के साथ शांत रस का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

10.6 सखी संप्रदाय

इस संप्रदाय को हरिदासी संप्रदाय अथवा सखी संप्रदाय कहा जाता है। स्वामी हरिदास इस शाखा के प्रवर्तक है। इस संप्रदाय में कृष्ण की सखी रूप में भक्ति की जाती है। सखी संप्रदाय ने सखी भावना की उपासना को युगधर्म बना दिया। इस संप्रदाय का 'रूप और प्रेम का सिद्धांत' प्रेमदर्शन अथवा सौंदर्यशास्त्र के अति निकट है।

संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी की रचनाएँ हैं- सिद्धांत के पद, कलिमल आदि। ये निकुंज विहार की आराधना करते थे। किशोरदास की चर्चित रचना 'निजमत-सिद्धांत' से सखी संप्रदाय की मान्यताओं पर प्रकाश पड़ता है। स्वामी हरिदास ने किसी दार्शनिक मतवाद का प्रतिपादन या समर्थन अपने ग्रंथों में नहीं किया।

सखी संप्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में से जगन्नाथ गोस्वामी, बिठल विपुल, बिहारीदास आदि प्रमुख हैं। बिठल विपुल स्वामी हरिदास से पांच साल बड़े थे और कहा जाता है, ये हरिदास की ममेरे भाई है। नाभादास ने भक्तमाल में इन्हें रससागर की उपाधि दी है। बिहारी दास इस संप्रदाय के श्रेष्ट कवि और सिद्धांत के व्याख्याता माने जाते हैं।

10.7 चैतन्य संप्रदाय

कृष्ण भक्ति साहित्य में गौड़ीय संप्रदाय अथवा चैतन्य संप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु है। इनका दर्शन औचित्य भेदाभेदवाद है। इनको गौरांग, निमाई, विश्वम्भर नाम से भी जाने जाते हैं। इस संप्रदाय में राधा का परकीया स्वरूप मान्य है। गौड़ीय संप्रदाय के अन्य कवि हैं- रामराय, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवानदास, माधवदास आदि।

बलदेव विद्या भूषण की 'गोविंदभाष्य' से गौड़ीय संप्रदाय की दार्शनिक मान्यताएँ उजागर हुई है। जहाँ ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म- ये पांच तत्व स्थिर करते हुए ईश्वर को विभुचैतन्य, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और मुक्तिदाता कहा है। इस संप्रदाय में भक्ति के पांच भेद किए गए हैं- शांत, दास्य, सख्य, माधुर्य, वात्सल्य। यहाँ सबसे ज्यादा महत्व माधुर्य भक्ति को दिया गया है। इस संप्रदाय में वियोग पक्ष पर अधिक बल दिया गया है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. हिंदी कृष्ण काव्य परंपरा में वल्लभ संप्रदाय की भूमिका पर अपना विचार व्यक्त कीजिए।

10.8 संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण-काव्य

भक्तिकाल में कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने किसी सम्प्रदाय में न बंधकर राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गुणगान स्वतंत्र भाव से किया है। इनमें से प्रमुख हैं- मीराबाई और रसखान।

मीरा द्वारा रचित पद उनके जीवन और परिस्थितियों का प्रतिफलन है। उनके पद हृदय के गहन तथा सहज प्रेमोच्छ्वास का साकार रूप है। उनके आराध्य 'गिरिधर गोपाल' की विलक्षण रूप की छठा उनके काव्य में शब्द बनकर बिखरी है। प्रेमाकुलता, वियोग, रहस्य, माधुर्य तथा दैन्यता मीरा के काव्य की प्रमुख विशेषता है। वियोग श्रृंगार के अतिरिक्त मीरा के काव्य में शांत रस की व्यंजना हुई है।

रसखान को कृष्ण भक्त कवियों में गिने जाते हैं। कहा जाता है गोस्वामी विट्ठलनाथ से वल्लभ संप्रदाय के अंतर्गत इन्होंने दीक्षा ली थी। मगर रसखान की कविता स्वच्छंद प्रवृत्तियों का सूचक है। उनकी भक्ति हृदय की मुक्त साधना है। स्वच्छंद काव्य धारा के प्रवर्तक रसखान के लिए काव्य रचना साध्य नहीं था और न ही उनकी वाणी का विलास यश-धन-प्राप्ति के निमित्त था। उनके पद प्रेमाताप की उष्णता और उमंगों का पद हैं। उन्होंने अलौकिक रस के श्री कृष्ण के लीलागान के रसास्वादन में ही खुद को धन्य माना है। उनके काव्य में प्रेम वर्णन का रूप बड़ा ही सूक्ष्म, व्यापक एवं विषद है। जिसमें श्रृगार रस की प्रमुखता है और जिसके आलंबन श्रीकृष्ण ही है। श्रृंगार के अतिरिक्त रसखान ने थोड़ा-बहुत श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन भी किया है।



10.9 सारांश

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा साहित्य की एक सशक्त धारा है। इस धारा को आगे ले जाने में उल्लेखित संप्रदायों की विशेष भूमिका रही हैं। इन भक्त कवियों ने अपनी काव्य की रचना के लिए तत्कालीन वृन्दावन में प्रचलित ब्रज भाषाओं को अपना आधार मानते हुए अपने पदों की रचना की। जिसमें मुख्यत: कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को वर्णन करके लोगों में आनंद और उल्लास की एक परिवेश का सृजन किया। इन कृष्य भक्ति सम्प्रदायों के कवियों ने अपने काव्य में कृष्ण लीलाओं का वर्णन कभी सखा, कभी प्रेमी, कभी खुद को दास मानते हुए किया। इनके वर्णन में शांत, श्रृंगार, हास्य, वात्सल्य भक्ति आदि रसों का समाहार मिलता हैं। मूलत: कृष्ण काव्य के क्षेत्र में इन कवियों तथा उल्लेखित सम्प्रदायों की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण है।

10.10 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : कृष्ण भक्ति साहित्य में वल्लभ संप्रदाय सोलहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित किया गया था। जिसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत दर्शन है। इस संप्रदाय को कृष्ण भक्ति साहित्य की रीढ़ कहा जाता है।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए '**वल्लभ संप्रदाय**' को ध्यान से पढ़िए।



10.11 अधिक जानने के लिए पढ़ें

अधिक जानने के लिए पढ़ें-

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



10.12 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. राधावल्लभ संप्रदाय की स्थापना कब और कहाँ हुई थी ?
2. चैतन्य संप्रदाय का दूसरा नाम क्या है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. कृष्ण भक्ति से संबंधित विभिन्न संप्रदायों की भूमिकाओं को उल्लेख कीजिए।
2. कृष्ण भक्ति काव्य के प्रचार-प्रसार में सबसे महत्वपूर्ण स्थान किस संप्रदायों का है ? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
3. संप्रदाय रहित कृष्ण काव्य की भूमिका और इसके लेखकों के बारे में लिखिए।

*** ***** ***

इकाई 11 : राम काव्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 राम काव्य का सामान्य परिचय

11.4 रामभक्ति काव्य के प्रमुख कवि और रचनाएँ

11.5 राम काव्य परंपरा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

11.6 सारांश

11.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

11.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- भक्तिकालीन रामभक्ति संप्रदाय के स्वरूप को जानेंगे।
- रामकाव्य से संबंधित विभिन्न सम्प्रदायों को तथा भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में इसकी भूमिका से अवगत होंगे।
- राम भक्ति संप्रदाय के प्रमुख कवि और उनके रचनाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।

11. 2 प्रस्तावना

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक मर्यादा–पुरुषोत्तम रामचंद्र के शील, शक्ति एवं सौंदर्य से मंडित अलौकिक व्यक्तित्व के विविध रूपों ने जनमानस को आकृष्ट किया है। भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा में रामभक्ति काव्य की एक लंबी परंपरा रही है। वेद, रामायण आदि पौराणिक ग्रंथ राम पर ही लिखा गया है। वैष्णव भक्ति के विकासक्रम में भी रामभक्ति तथा उसके काव्य के प्रसार में इन रामभक्ति शाखा के कवियों का विशेष महत्व रहा है। हिंदी साहित्य में रामावत संप्रदाय को रामभक्ति को लेकर काव्य रचना करने में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। राम के जीवन से संबंधित पहला महाकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' को स्वीकार किया गया है। इसी धारा को आगे बढ़ाते हुए पहले रामानंद और फिर तुलसी ने अपना योगदान दिया। यद्यपि तुलसी से पहले विष्णुदास, अग्रदास, ईश्वरदास आदि ने राम कथा लिखी पर इस धारा के मुख्य प्रवर्तक तुलसी को ही स्वीकारा जाता है। तुलसीदास को ही इस धारा के प्रतिनिधि कवि माना गया है।

11.3 राम काव्य का सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य के सगुण भक्तिधारा के इस संप्रदाय में मूलत: विष्णु के अवतार राम की आराधना की जाती है। स्वामी रामानंद ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत में रामभक्ति की लहर तैयार किया, लोगों को राम भक्ति में लीन करता हुआ लोगों को आनंद तथा आदर्श राज्य की प्रतिष्ठा करनेवाला काव्य राम काव्य है। सामान्यत: रामकाव्य से राम के सम्पूर्ण रूपों का, लीलाओं का परिचय प्राप्त होता है। यह काव्य लोक-धर्म, लोक-चिंता, लोक-मानस, लोक-रक्षा, लोक-मंगल की भावनाओं का उद्धोतक है। इस प्रकार के काव्य में राम को शील, शक्ति, सौंदर्य और मर्यादा पुरुषोत्तम के गुणों को अंकित किया गया है। राम के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा इस संप्रदाय में हुई।



महत्वपूर्ण बिंदु

- राम के जीवन से संबंधित पहला महाकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' है।

हिंदी साहित्य में रामकाव्य धारा ने सगुण भक्ति की मूल संवेदनाओं को लोक-भाव-भूमि पर दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया है। जिनमें से तुलसी के रामचरितमानस, केशवदास की रामचंद्रिका इस सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है।

11.4 रामभक्ति काव्य के प्रमुख कवि और रचनाएँ

रामभक्ति की प्रतिष्ठा रामानंद से हुई और इस धारा का विकास तुलसी के हाथों हुआ। रामभक्ति काव्य के विकास में अनेक कवियों ने अपना योगदान दिया। जिनमें से प्रमुख हैं- अग्रदास, ईश्वरदास, तुलसीदास, जन जसवंत, नाभादास, केशवदास, प्राणचंद चौहान आदि। नीचे प्रमुख रामभक्त कवि और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है-

तुलसीदास- तुलसी के जन्मकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद है। बेनीमाधव दास ने 'मूल गोसाई-चरित' में तुलसीदास का जन्म सन् 1554 माना है। जनश्रुति के आधार पर तुलसी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। तुलसी की शादी रत्नावली से हुई थी और पत्नी से वे अत्याधिक लगाव रखते थे। उनके गुरू का नाम नरहरिदास। नरहरिदास ने ही तुलसी को राम-कथा सुनाकर रामभक्ति की ओर प्रवृत्त किया।

तुलसी द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या बारह मानी जाती हैं। जिनमें से जानकी मंगल, पार्वती मंगल, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली, रामचरितमानस आदि प्रमुख है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में मर्यादा पुरषोत्तम राम के चरित्रानुकूल प्रसंगों को विवेचित किया है।

स्वामी रामानंद- स्वामी रामानंद का जन्म सन् 1400 से 1470 के आसपास माना गया है। इनका जन्म काशी में हुआ। स्वामी रामानंद संस्कृत के पंडित थे। इनके शिष्य परम्पराओं में-

कबीरदास, रैदास, धन्ना, पीपा आदि प्रमुख थे। रामानंद ने हिंदी में अनेक पदों की रचना की जिनमें से कुछ पद अधिक प्रसिद्ध है।

अग्रदास– रामभक्त कवि अग्रदास स्वामी रामानंद के शिष्य थे। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं– ध्यानमंजरी, अष्टयाम, हितोपदेश, रामभजनमंजरी, उपासना–बवानी, कुण्डलिया आदि। अष्टयाम अथवा रामाष्टयाम इनकी सर्वप्रमुख रचना है।

नाभादास– नाभादास तुलसी के समकालीन रामभक्त थे। इनके गुरु अग्रदास थे। इनकी प्रसिद्ध रचना हैं– भक्तमाल और अष्टयाम। अष्टयाम में रामभक्ति से संबंधित पद उपलब्ध है।

ईश्वरदास– ईश्वरदास का जन्म 1480 ई. के आसपास माना जाता है। उनकी सुप्रसिद्ध रचना है 'सत्यवती कथा' जिसकी रचना 1509 ई. में किया था। रामकथा से संबंधित इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं– भरत मिलाप और अंगद पैज।

केशवदास– केशवदास का जन्म 1555 ई. में और मृत्यु 1617 ई. में माना जाता है। इनकी रचनाएँ हैं– कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता आदि। इनकी 1601 में रचित 'रामचंद्रिका' रामकाव्य परम्परा की प्रमुख कृति है। यह प्रबंध काव्य 39 प्रकाशों में व्याप्त है।

इन कवियों के अलावा प्राणचंद चौहान कृत च्रामायण महानाटक, माधवदास चरण की रामरासो, कपुरचंद्र कृत रामायण आदि इस परम्परा के महत्वपूर्ण रचना है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. रामकाव्य को परिभाषित करते हुए रामकाव्य धारा का परिचय दीजिए।

11.5 राम काव्य परंपरा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

भक्तिकालीन हिंदी सगुण भक्तिधारा के अन्य सम्प्रदायों की तरह रामभक्ति संप्रदाय भी अपना विशेष महत्व रखता है। इस परम्परा की प्रमुख विशेषताओं को नीचे कुछ शीर्षकों में बाँटा गया हैं–

राम का स्वरूप– रामभक्त कवियों का उपास्यदेव भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम है। वे परमब्रह्म स्वरूप है। सत्य और धर्म की रक्षा और उसे न्याय दिलाना तथा असत्य और अधर्म को नाश करने के लिए ही उनके अवतारी राम का जन्म हुआ है। इस संप्रदाय में राम का स्वभाव शील, शक्तिशाली और अनुपम सौंदर्य के अधिकारी है। राम विष्णु के अवतार है और भक्त कवि मानव रूप में उनका साधक है।

समन्वय की भावना– सगुण काव्यधारा में रामकाव्य का स्वरूप अधिक व्यापक है।

मूलत: यह कहा जा सकता है कि रामकाव्य विराट समन्वय भावना का प्रतीक है। इसमें न केवल राम की ही उपासना है, अपितु हिन्दू धर्म के अन्य प्रमुख देवता कृष्ण, शिव, गणेश आदि की भी उपासना की गयी है। उस समय सगुण और निर्गुण को लेकर लोगों में काफी क्रिया-प्रतिक्रिया थी, जहाँ सब अपने को श्रेष्ठ दिखाने की कोशिश में लगे हुए थे। लेकिन रामकाव्य में सगुण और निर्गुण दोनों का समन्वय है। यहाँ सगुण को श्रेष्ठ मानते हुए भी सगुणवाद और निर्गुणवाद की एकरुपता को दिखाया गया है।।

लोक कल्याण की भावना- राम काव्य लोक कल्याण की दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। राम काव्य गृहस्थ जीवन को उपेक्षा नहीं करता। राम मनुष्य के रूप में एक आदर्श राजा है। जो केवल प्रजा के हित और सुख की कामना करता है । राम काव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार-व्यवहार की कसौटी पर किया गया है। यहाँ सीता आदर्श पत्नी है, कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, हनुमान आदर्श सेवक है तथा सुग्रीव आदर्श सखा। आदर्श की प्रतिष्ठा उनकी आदि और अंत है।

भक्ति का स्वरूप- राम भक्त कवियों ने भक्ति के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला है। यहाँ राम आराध्य और भक्त-कवि सेवक है। तुलसी के अनुसार-

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भाव ने तरीच उरगारि।'

रामभक्त कवियों की भक्ति भावना अपेक्षाकृत अधिक उदार है। इनके भक्ति में नवधा भक्ति का विधान है। ये भक्त कवि द्वैतवाद से प्रभावित थे।

गुरु का महत्व- संत काव्य की तरह ही राम भक्ति काव्य में गुरु को महत्व दिया गया है। महाकवि तुलसी के अनुसार बिना गुरु ज्ञान की प्राप्ति असंभव है और ज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है।

रुपोपासना- जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश रामकाव्य में निहित होने के कारण इसमें विभिन्न रसों का समावेश हैं। महाकवि तुलसीदास में सभी रसों का समावेश हुआ है। उनके काव्य में मूलत: श्रृंगार, शांति, वीर, रौद्र, करुण, भयानक, अद्भुत, हास्य और कही कहीं वीभत्स रस का भी प्रयोग हुआ है।

काव्य-शैली- सगुण रामभक्ति परम्परा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानों की संगति से साहित्य के धर्मों के संबंधों में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इनको अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। यही कारण है कि रामकाव्य में सभी शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं। इसमें प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्यरूपों का प्रयोग हुआ है। रामचरित मानस में मुक्तक, विनय पत्रिका में प्रबंध मुक्तक का मिश्रण, 'रामलला नहछु' में गीति काव्य के प्राय: सभी तत्व विद्यमान है।

भाषा- रामकाव्य की भाषा मूलत: अवधी है। लेकिन केशवदास ने अपनी रचना रामचंद्रिका में ब्रज भाषा का प्रयोग किया। बाद के रसिक संप्रदाय के कवियों ने भी ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। तुलसी ने अपनी रचना में ब्रज और अवधी दोनों का सफल प्रयोग किया है।

अलंकार योजना– राम भक्त कवि पंडित होने के नाते वे अलंकार शास्त्र की अवहेलना नहीं की हैं। अलंकार के प्रयोग में विदग्धता का प्रदर्शन इन कवियों की प्रमुख विशेषता है। इसलिए कहा भी जाता है कि इनके काव्य में अलंकार शास्त्र की अवहेलना हुई है। लेकिन रामकाव्य के कवि केशवदास इससे अलग है, उनके काव्य में बड़ी मात्रा में शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। तुलसी काव्य में भी सभी अलंकार मिलते हैं, किन्तु वे उपमा और रूपक के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

छन्द विधान– रामकाव्य में रचना भेद, भाषा भेद, विचार भेद, अलंकार भेद के साथ-साथ छंद भेद भी पाया जाता है। वीर गाथाओं के छप्पय, संत काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई और इनके अतिरिक्त कुण्डलिया, सरोठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छन्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।



11.6 सारांश

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि रामभक्ति सम्प्रदाय भक्तिकाल के एक प्रमुख सम्प्रदायों में से एक था, जिसका भारतीय साहित्य और संस्कृति पर विशेष महत्व था। इन कवियों के लिए कविता इनकी साध्य नहीं साधन है। इनका साध्य रामभक्ति है। अपने साध्य तक पहुँचने के लिए इन कवियों ने जिस साधना को स्वीकार किया हैं, उसे इतना समर्थ और पूर्ण बना दिया गया था कि उनका मानस जनमानस हो गया था। इस संप्रदाय में मानव जीवन के विभिन्न दशाओं का सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण उपलब्ध है। इन कवियों ने एक ओर धर्म रक्षा, लोकहित एवं समाज के उत्थान में योग दिया हैं तो दूसरी ओर काव्य को उदात्त, उत्कृष्ट एवं लोक मंगलकारी रूप प्रदान करने के लिए यथा संभव प्रयास किया है।



11.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : काव्य लोक-धर्म, लोक-चिंता, लोक-मानस, लोक-रक्षा, लोक-मंगल की भावनाओं का उद्धोतक है। इस प्रकार के काव्य में राम को शील, शक्ति, सौंदर्य और मर्यादा पुरुषोत्तम के गुणों को अंकित किया गया है। राम के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा इस संप्रदाय में हुई।

अधिक जानने के लिए पढ़ें **'रामकाव्य- सामान्य परिचय'**।



11.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



11.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. सत्यवती कथा किसकी रचना है?
2. अग्रदास की किन्हीं दो रचनाओं का नाम उल्लेख कीजिए।
3. रामकाव्य परंपरा के चार कवियों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. रामभक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताओं को लिखिए।
2. रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं पर आलोकपात कीजिए।
3. टिप्पणी लिखिए -

   क) तुलसीदास ।

   ख) नाभादास।

*** ***** ***

इकाई 12 : राम भक्ति काव्य परंपरा में तुलसी

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 तुलसी की भक्ति भावना

12.4 रामकाव्य परंपरा में तुलसी का स्थान

12.5 सारांश

12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

12.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- तुलसीदास का जन्म, परिवार और परिवेश से परिचय प्राप्त करेंगे।
- रामकाव्य परंपरा में तुलसी के महत्व और विभिन्न कवियों के बारे में जानेंगे।
- तुलसी की भक्ति-भावना और उनके राम का स्वरूप कैसा है? इन बातों से भी अवगत होंगे।

12.2 प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास का पादुर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब मध्यकाल का अस्थिर दौर चल रहा था, सामाजिक व्यवस्था चरमरा चुकी थी तथा भारतीय जनता मुग़ल शासकों के शासन से त्रस्त थी। समाज विभिन्न पंथ और धार्मिक कर्मकांडों में लीन था। उस समय तुलसी का आगमन हिंदी साहित्य में हुआ।

तुलसी राम के एकनिष्ठ और अनन्य भक्तों में से एक है। उन्होंने अपने समस्त काव्य ग्रंथों में राम के प्रति अनन्य भक्ति को व्यक्त किया है। पुरुषोत्तम राम को तुलसी ने अपना इष्टदेव मानकर समस्त अनुभूतियों को उन्हीं पर समर्पण कर दिया है। अपने राम के लिए तुलसी सेवक अथवा दास है और उन्होंने यह भाव अपने रचना में भी व्यक्त किया है। 'रामचरितमानस' जैसे काव्य लिखकर तुलसी ने भगवान राम की भक्ति को घर-घर तक पहुँचाया है।

12.3 तुलसी की भक्ति भावना

अपने इष्टदेव राम के प्रति गभीर श्रद्धा और विश्वास तुलसी की भक्ति का मेरुदंड है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की भक्ति थी। वे राम के प्रति सम्पर्पित थे। राम को स्वामी और खुद को वे सेवक मानते थे। तुलसी की भक्ति भावना राम के प्रति अनन्य है। राम प्रति तुलसी की अटल श्रद्धा है। उन्हें मुक्ति की आकांशा नहीं है। वे चातक को प्रेम और भक्ति का परम आदर्श मानते हुए कहते हैं–

'एक भरोसे एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।।'

तुलसी की भक्ति दैन्य भाव की भक्ति है। उस देन्यता के कारण राम को सबसे बड़ा और महान मानते थे और और खुदको सबसे छोटा। 'आत्मनिवेदन' की इसी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने कहा है–

'राम सौं बड़ों है कौन मोसो कौन छोटो ?
राम सौं खरो है कौन मोसो कौन खोटो ?'

तुलसी की भक्ति नवधा भक्ति से पूर्ण है। जिसमें श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वंदन, पाद सेवन, दास्य, नामस्मरण और आत्मनिवेदन आते हैं। राम नाम की महिमा का प्रतिपादन तुलसी ने स्थान–स्थान पर किया है। वे कहते हैं–

'राम जपु राम जपु राम जपु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।।'

तुलसी का राम विष्णु का अवतार और अपूर्व शक्ति के भंडार है। जो धर्म की रक्षा के लिए और दुष्टों का विनाश करने के लिए बार–बार जन्म लेता है। उनकी भक्ति में राम के लिए विनय की सातों भूमिकाएँ– दैन्य, मान–मर्यादा, भय दर्शाना, भत्सर्ना, आश्वासन, मनोराज्य एवं विचारणा का समावेश है।

तुलसी ने भक्ति में सत्संग को महत्व दिया है। उन्होंने भक्ति में ज्ञान और भक्ति में से भक्ति मार्ग को ही सरल माना है। तुलसी के अनुसार प्रभु इतने समर्थ और अंतर्यामी है, जो हर पल अपने शिष्यों की रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं।

तुलसी राम के अप्रतिम भक्त है। उनकी भक्ति को देखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है "गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है– उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को छोड़कर वह नहीं चलता है। सब पक्षों के साथ उसका सामजंस्य है।"

12.4 रामकाव्य परम्परा में तुलसी का स्थान

रामकाव्य परम्परा का यद्यपि एक लम्बा इतिहास है, तथापि इस परंपरा का केन्द्र बिंदु गोस्वामी तुलसीदास है। तुलसीदास संस्कृत के विद्वान थे, जिन्हें वेद, पुराण, उपनिषद् तथा

विभिन्न दार्शनिक मतों से भली-भांति परिचय था। लेकिन उस समय के समाज को उनके साहित्य के अधिक निकट लाने के लिए उन्होंने संस्कृत की बजाएं लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा को चुना।

तुलसीदास को भक्तिकालीन रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि माना गया है। उनके काव्य सामाजिक और लोकमंगल की दृष्टि से अनुपम निधि है। तुलसी का साहित्य एक ओर लोगों में भक्ति भावना को जागृत करता है, तो वही सामाजिक चेतना का प्रचार भी करता है।

राम-काव्य परंपरा का संबंध वैष्णव धर्म से है और इसका उत्पन्न बौद्ध धर्म के कर्मकांड की प्रतिक्रिया स्वरूप माना गया है। कालांतर में राम और कृष्ण भगवान विष्णु के दो रूप प्रचलित होने लगे और रामानंद से ही रामभक्ति काव्य धारा का प्रारंभ हुआ। ये 'रामावत संप्रदाय' के प्रवर्तक थे।

इस प्रकार हिंदी साहित्य में तुलसी से पूर्व रामानंद ने रामभक्ति का एक वातावरण पूरे उत्तर-भारत में तैयार कर दिया था और उसी परंपरा को विकसित करते हुए तुलसी ने राम-भक्ति को अपने काव्यों के माध्यम से कोने-कोने तक पहुँचाने का जिम्मेदारी अपने कंधों पर लिया। रामभक्ति परंपरा की सबसे पौढ़ रचना तुलसीदास की 'रामचरितमानस' है। जिसका आधार वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म्य रामायण है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण से राम के चरित्र को लेते हुए भक्ति का निरूपण अध्यात्म्य रामायण से किया। रामचरित मानस के अलावा तुलसी ने रामलला नहछू, जानकी मंगल, गीतावली, विनय पत्रिका, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, रामाज्ञ प्रश्न, कवितावली आदि ग्रन्थ लिखे।

'रामचरितमानस' की रचना तुलसी ने 1574 ई. में की थी। इस ग्रन्थ के माध्यम से तुलसी ने रामकथा को लेकर भारतीय जनता में एक ऐसा आदर्श रूप प्रस्तुत किया जिसे लोगों को अधिक पसंद आने लगा। तुलसी के राम मर्यादा पुरषोत्तम, समन्वय और लोकमंगल की एक विराट प्रतिमा है। रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में लिखा हैं- "जैसे वीरगाथा काल के कवि उत्साह को, भक्तिकाल के दुसरे कवि प्रेम और ज्ञान को; अलंकार काल के कवि दांपत्य, प्रणय या श्रृंगार को महत्व देते हैं, वही तुलसी की वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद् भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है।"

भारतीय जनता के समक्ष तुलसी ने संत कवियों की तुलना में राम का ऐसा सहज रूप लोगों के सामने रखा जिसके लिए किसी विशेष मत, पंथ व साधना की आवश्यकता नहीं है, जिसे ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। तुलसी राम को अपना आराध्य मानते थे और कृष्ण के प्रति भी सद्भाव रखते थे। तुलसी केवल कृष्ण, शिव आदि ही नहीं अपितु सगुण और निर्गुण के भेद को भी समाप्त कर देने पर तुले हुए थे। उन्होंने लिखा है-

'सगुनहि अगुनहि नहीं कुछ भेदा।
गाँवहि मुनि पुराण बुध वेदा।'

तुलसी ने व्याक्तिधर्म और लोकधर्म दोनों को समान महत्व दिया

तुलसी ने अपने आराध्य राम को सिर्फ अवतारी रूप में ही नहीं दिखाया, उसे एक साधारण मनुष्य के रूप में दिखाया है। इस प्रकार वे राम के मानव रूप को सशक्त आधार देते हैं।

तुलसी के अलावा उनके समकालीन कवियों में मुनिलाल कृत 'रामप्रकाश' काव्य मिलता है, मगर यह रीतिशास्त्र के आधार पर ही लिखा गया था। इसके अतिरिक्त इसी काल में नाभादास ने राम-भक्ति संबंधी कुछ सुन्दर पद लिखे। महाकवि केशवदास ने 'रामचंद्रिका' नामक महाकाव्य की रचना की, लेकिन इसमें राम को उस रूप में प्रतिष्ठा नहीं किया गया जिस रूप में तुलसी ने किया था। रामचंद्रिका में चरित्र-चित्रण एवं प्रबंधात्मकता की उपेक्षा की गयी है। तुलसी के समकालीन कवियों के उपरांत प्रानचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' मिलता है। इसे केवल संवाद के रूप में ही लिखा गया। इसके उपरांत गुरु गोविंद सिंह कृत 'गोविंद रामायण', श्रीधर कृत 'रामचरित्र' आदि उल्लेखनीय है।

आधुनिक युग में भी रामकथा से संबंधित काव्यों का प्रणयन हुआ, जिनमें से रामचरित उपाध्याय की 'रामचरित चिंतामणि', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', अयोध्या सिंह उपाध्याय की 'वैदेही-वनवास' आदि प्रसिद्ध है।

इस प्रकार रामकाव्य संबंधी सम्पूर्ण वांग्मय का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि तुलसी ने जिस राम काव्य का वर्णन किया वह 'नानापुराण-निगामगमसम्मत' है।

रामभक्ति काव्य परंपरा में तुलसी का काव्य आत्मनिवेदन और विनय का काव्य है। उसमे प्रतीरोध की भावनाएँ होते हुए भी वह प्रतिरोध, अन्याय के खिलाफ, अधर्म के खिलाफ और असत्य के खिलाफ थी।

तुलसी के राम किसी वर्ग या वर्ण में बंधे हुए नहीं थे। उनमें समन्वय की भावना थी।



अपनी प्रगति जांचें

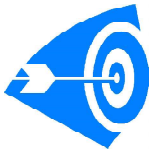
प्रश्न 1. 'रामचरितमानस' पर एक टिपण्णी लिखिए।



12.5 सारांश

तुलसीदास भारतीय हताश, निराश एवं त्रासद जनता में एक नई ऊर्जा पैदा किया। जिन्होंने तत्कालीन विभिन्न परम्पराओं में से ऐसी परंपरा का अविष्कार किया, जहाँ सबके लिये आराध्य राम सहज तथा उपासना की पद्धति सरल थी। जिन्होंने समन्वय की वाण चलाकर लोगों

में राम भक्ति का अद्भुत चस्का लगाया। असल में उनके भक्ति भावना में समाज की, राजनीति की, कर्मनीति की और जीवन की सभी विशेषताएँ उपलब्ध हैं। राम काव्य परम्परा में तुलसी की भक्ति भावना सबसे महान और लोगों के निकट है। जिन्होंने राम के द्वारा समाज में एक आदर्श राज्य, आदर्श राजा के रूप में राम को प्रतिष्ठा किया है। इसलिए उन्हें रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माना गया है।



12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : रामभक्ति परंपरा की सबसे पौढ़ रचना तुलसीदास की 'रामचरितमानस' है। जिसका आधार वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म्य रामायण है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण से राम के चरित्र को लेते हुए भक्ति का निरूपण अध्यात्म्य रामायण से किया।

अधिक जानकारी के लिए '**रामकाव्य परंपरा में तुलसी का स्थान**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



12.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



12.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. रामचरितमानस की रचना कब हुई थी ?
2. रामचंद्रिका किसकी रचना है ?

3. तुलसीदास की किन्हीं चार रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. तुलसी की भक्ति भावनाओं को स्पष्ट कीजिए।
2. रामकाव्य परम्परा में तुलसी का स्थान अनन्य है- सतर्क उत्तर दीजिए।
3. तुलसी का सामान्य परिचय देते हुए तुलसी के राम के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 13 : कृष्ण काव्य और राम काव्य में साम्य-वैषम्य

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 साम्य

13.4 वैषम्य

13.5 सारांश

13.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

13.7 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- कृष्णकाव्य और राम काव्य के समानताओं को जान सकेंगे।
- कृष्णकाव्य और रामकाव्य के असमानताओं से अवगत होंगे।
- दोनों काव्य परंपराओं की विशेषताओं से भी परिचय प्राप्त करेंगे।

13.2 प्रस्तावना

भारत का सांस्कृतिक परंपरा के उपादानों में कृष्ण भक्ति व रामभक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों काव्य परम्पराओं के अपनी अपनी विशेषताएँ तथा अपना-अपना महत्व है। रामानुजाचार्य ने रामकाव्य परम्परा की स्थापना की थी, पर इस शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसी को माना जाता है। दूसरी ओर कृष्णकाव्य विष्णु स्वामी के शुद्धाद्वैत की देन है। जिसका विस्तार वल्लभाचार्य ने किया है और इस शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास को माना जाता है। इन दोनों काव्य परम्पराओं में अपने अपने आराध्य की गुणगान तथा लीलाओं का वर्णन है। जिसका मूल उद्देश्य लोगों में अपने संप्रदाय के प्रचार के साथ-साथ आनंद पैदा करना भी था। रामकाव्य और कृष्णकाव्य दोनों सम्प्रदायों के काव्यों में बहुत कुछ अंतर और समानताएँ हैं। जिसका उल्लेख नीचे उपलब्ध है-

13.3 साम्य

भक्तिकाल में उपलब्ध राम और कृष्ण काव्य का विशेष महत्व रहा है। इन दोनों काव्यों के प्रमुख कवियों ने मूलत: सगुण और निर्गुण दोनों का उल्लेख करते हुए सगुण की ही महत्व को दिखाने की कोशिश की है। दोनों काव्य की समानताओं को अगर ध्यान से देखा जाय तो यह

स्पष्ट रूप से नजर आता है कि दोनों के मूल में 'विष्णु' है। अर्थात रामकाव्य और कृष्णकाव्य में राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार है।

दोनों प्रकार के काव्य में आत्मसमर्पण और निष्ठा भावना दिखाई पड़ती है। अपने आराध्य तथा ईश्वर के लिए सब पागल है। भक्ति का माध्यम चाहे जैसा भी हो, लेकिन दोनों सम्प्रदायों में धर्म का रक्षक तथा सर्वशक्तिशाली, ज्ञानी और अनादि पुरुष दोनों ही है। दोनों अपने भक्तों का पालनहार और असुरों का नाशक हैं।

दोनों प्रकार के काव्यों में भाषा-शैली पर ध्यान देने से दोनों में लगभग एक रूपक और समानताएँ ही नजर आती है। दोनों प्रकार के काव्यों में ब्रज भाषा का मुख्यत: प्रयोग किया गया है। राम भक्ति और कृष्ण भक्ति दोनों काव्यों में गुरु को महत्व दिया गया है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- रामकाव्य और कृष्णकाव्य सगुण भक्तिधारा की प्रमुख संप्रदाय है।

13.4 वैषम्य

रामकाव्य और कृष्णकाव्य के अंतर इस प्रकार हैं-

1. राम काव्य में राम को महत्व दिया जाता है और कृष्ण काव्य में कृष्ण को महत्व दिया जाता है।
2. रामकाव्य में श्री राम को लोकरंजक, लोकनायक, आदर्श पुरूष के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और कृष्णकाव्य में कृष्ण को लोकरंजक, रसेश्वर तथा आनंदकारी के रूप में सामने लाया गया है।
3. रामकाव्य परंपरा में मर्यादा पुरूषोत्तम राम को ईश्वर का अवतार मान कर आराधना की गयी है, कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण को अवतार मानकर उनके सभी रूपों में से उनके मनोरम झांकी प्रस्तुत की गयी है।
4. राम काव्य में दास्य भाव की उपासना पद्धति को सामने रखा गया है, जिसमें मर्यादा पर अधिक बल दिया गया है, अपितु कृष्ण काव्य में सख्य भाव से उनकी उपासना की गयी है।
5. रामकाव्य में आदर्श-रामराज की स्थापना करने पर बल दिया गया है अपितु कृष्ण भक्ति काव्य में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ट बताया गया है।
6. रामभक्ति काव्य में मुक्तक एवं प्रबंधक दोनों रूपों में उपलब्ध है, लेकिन कृष्ण भक्ति काव्य मुक्तक तथा गेय रूप में उपलब्ध है।
7. रामकाव्य की भाषा अवधी और ब्रज दोनों है। तुलसीदास ने अपने साहित्य की रचना

अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में की है और कृष्णकाव्य की भाषा केवल ब्रज है।

8. राम काव्य समन्वय की विराट चेष्टा को लेकर चला है, परन्तु कृष्ण काव्य में मधुर रति को ही अधिक महत्व दिया है।
9. रामकाव्य में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के विभिन्न घात-प्रतिघातों का सजीव चित्रण किया गया है, जबकि कृष्णकाव्य में जनसमुदाय का उस रूप में किया गया चित्रणों का अभाव है।
10. रामकाव्य में वर्ण, आश्रम, कर्मकांड तथा वेद-मर्यादा आदि के प्रति पूरा विश्वास रखा गया है, पर कृष्णकाव्य में केवल माधुर्य भाव की भक्ति है।
11. रामकाव्य की भाषायों में शुद्ध और तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया हैं तथा कृष्णकाव्य में ऐसा कुछ नहीं है।
12. रामभक्ति कवियों को समाज के अच्छे और बुरे की जानकारी है और कृष्णभक्ति कवि केवल अपने और अपने आराध्य के प्रति अनुभूतियों को ही व्यक्त कर आनंद की महसूस करते थे।
13. रामकाव्य में गंभीरता उपलब्ध है। हास्य भी है किन्तु शिष्ट रूप में, इसमें कहीं भी उच्छृश्रृंखला नहीं आ पाई है, लेकिन कृष्ण काव्य में मुख्यत: प्रेम को स्वतंत्रता दी गयी है। प्रेम के चरमोत्कर्ष की अभिव्यक्ति व्यंग्य और उपलाम्भों के सहारे ही की गयी है।



13.5 सारांश

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रामकाव्य में आदर्श, मर्यादा और शांति है, वहीं कृष्णकाव्य में आनंद और उल्लास है। राम काव्य और कृष्णकाव्य दोनों तत्कालीन भक्तिकाल के सगुण भक्तिधारा की दो प्रमुख संप्रदाय है। दोनों ने अपने आराध्य तथा उपास्य देव को श्रेष्ट तथा महान रूप में स्थापित कर अपने अनुभूतियों को कविताओं के माध्यम से लोगों तक पहुचायाँ है। भक्तिकालीन इस दोनों काव्य परम्पराओं का अपना विशेष महत्व है।



13.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



13.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. कृष्णकाव्य की प्रमुख भाषा क्या है?
2. रामकाव्य और कृष्णकाव्य में निहित दो अंतर को स्पष्ट कीजिए।

(ख)निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. रामकाव्य और कृष्णकाव्य से आप क्या समझते हैं? दोनों के समानताओं पर विचार कीजिए।

2. रामकाव्य और कृष्य काव्य के किन्हीं दस अंतरों को स्पष्ट कीजिए।

3. रामकाव्य और कृष्णकाव्य पर एक तुलनात्मक आलेख प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 14 : भक्तिकालीन अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 वीरकाव्य

14.4 प्रबंधात्मक चरित काव्य

14.5 नीतिकाव्य

14.6 रीतिकाव्य

14.7 सारांश

14.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

14.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

14.10 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- भक्तिकालीन अन्य काव्यधाराओं के बारे में जानेंगे।
- इन काव्यधारा के विभिन्न कवि और उनकी रचनाओं से परिचय प्राप्त करेंगे।
- भक्तिकालीन इन काव्यधाराओं की हिंदी साहित्य में महत्व क्या हैं? उससे भी अवगत होंगे।

14.2 प्रस्तावना

भक्तिकाल में निर्गुण-सगुण भक्ति की प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ गौण काव्य-प्रव्रित्तियाँ भी पायी जाती हैं। ये सब निम्न प्रकार हैं-

14.3 वीरकाव्य

धार्मिक प्रवृत्तियों की प्रमुखता के कारण तत्कालीन समय में बहुत कम ही वीर काव्य लिखे गए हैं। ये वीर काव्य मूलत: राज्याश्रित है। इसमें मुख्य रूप से आश्रयदाताओं की यशोगाथा, युद्ध-सज्जा, दान, शौर्य, शत्रु के उपहास, युद्धों की भयावहता आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णना की गई है। इस काल में वीरकाव्य की रचना करनेवाले कवियों में से प्रमुख हैं- श्रीधर, नल्हसिंह, दयाराम तथा न्यामत खां जान आदि।

कवि श्रीधर ने 1400 ई. में राजा रणमल्ल राठौर के आश्रय में रहकर 'रणमल्लछन्द' की

रचना की थी। 'रणमल्लछन्द' की भाषा ओजपूर्ण और इसमें वीर रस का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। नल्हसिंह द्वारा रचित 'विजयपालरासो' भी इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध है, किन्तु इसकी रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मिश्रबंधुओं ने इसका समय 1298 ई. माना है, लेकिन परवर्ती विद्वान इसका रचनाकाल 1543 को स्वीकार किया है। इसमें विजयगढ़ के राजा विजयपाल और पंग राजा के बीच हुए युद्ध का सजीव वर्णन है। भक्तिकाल के अन्य एक कवि दयाराम अथवा दयाल कवि है, जिन्होंने लगभग 1618 ई. में 'राणारासो' की रचना की। इसमें सिसोदिया कुल के प्रमुख राजाओं- कुंभा, उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह के युद्धों और वीरतापुर्ण क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है। डिंगल भाषा में रचित इस कृति में 875 छन्द है। इस धारा के अन्य एक प्रमुख कवि है न्यामत खा जान। इन्होंने 'क्याम खां रासो' की रचना की जिसमें क्याम खां चौहान और उनके वंशजों के युद्धादि का वर्णन है।

14.4 प्रबंधात्मक चरित काव्य

भक्तिकाल में चरितमूलक प्रबंध काव्यों की रचना करनेवाले कवियों में से सधारू अग्रवाल, शालिभद्र सूरि, जाखू मणियार, देवप्रभ और पद्मनाभ आदि है। जिन्होंने आदिकाल की जैन काव्य परम्परा में रचित अथवा पौराणिक सन्दर्भ विशेष पर आधारित अथवा जन काव्य प्रवृत्तियों एवं रासो काव्य शैली की मध्यवर्ती कड़ी के रूप में कुछ चरितमूलक प्रबंध काव्यों की रचना की।

जैन काव्य परम्परा में विरचित सधारू अग्रवाल की 1345 ई. में रचित 'प्रद्युम्नचरित' इस परंपरा के प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें चौबीस तीर्थकारों की वन्दना के पश्चात् प्रद्युम्न की कथा का वर्णन किया गया है। नारद का सत्यभाम पर क्रोध, कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह, प्रद्युम्न का दैत्य द्वारा अपहरण, प्रद्युम्न के लिए रुक्मिणी का विलाप, प्रद्युम्न द्वारा कालसंवर के शत्रुओं का विनास, द्वारका आगमन, विवाह और अंत में प्रद्युम्न जिनेन्द्र से दीक्षा लेता है और कठिन तपस्या करके मोक्ष की प्राप्त करता है। इस प्रकार यह कथा जैन कथा ग्रंथों की श्रेणी में आती है।

शालिभद्र सुरि ने पौराणिक कथा पर आधारित 'पंचपांडवचरितरास' नामक जैन-काव्य की रचना की। चौदहवीं शताब्दी में रचित इस प्रबंधकाव्य को पंद्रह सर्गों में विभाजित किया गया हैं। कथा के मूल में अहिंसा को प्रधानता दी गयी है।

जैन-काव्य परम्परा से भिन्न रचनाओं में जाखू मणियार द्वारा रचित 'हरिचन्द्र पुराण' का नाम आता है। जिसका प्रकाशन 1396 ई. में हुई। इसमें राजा हरिचन्द्र की पौराणिक कथाओं का वर्णन है। चौदहवीं शताब्दी के अंत में देवप्रभ ने 'कुमारपालरासो' लिखा। यह ग्रन्थ जेन-रासो काव्य तथा वीर प्रशस्तिपरक 'रासो' काव्य की प्रवृत्तियों का समन्वय प्रस्तुत करती है। इसमें राजा कुमारपाल की प्रेम, नैतिकता, वीरता और उदारता का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार पद्मनाभ ने पंद्रहवी शताब्दी में 'कान्हड़दे प्रबंध' की रचना की। रासो काव्य की परंपरा से भिन्न इस रचना में कान्हड़ दे का चरित वर्णन है।

14.5 नीति काव्य

प्राचीन समय से ही भारतीय चिन्ताधारा नैतिकता को प्रमुखता देते आये हैं। पौराणिक ग्रंथों, वेदों, पुरानों आदि में नीति के तथ्य और उपदेश प्राप्त होते हैं, संस्कृत काव्य-नाटकों में भी यत्र-तत्र नीतिपरक पदावली उपलब्ध होते हैं। पालि, पाकृत, अपभ्रंश, बौद्ध, सिद्ध, नाथ, जैन आदि ग्रंथों में भी नीतिवचनावली की आधिक्य मिलता है। जहाँ, मोक्ष, न्याय, अहिंसा, क्षमा, करुणा, दया, सत्य, संयम, त्याग, परोपकार आदि को अधिक महत्व दिया गया हैं। उसी परम्परा को आगे बढ़ाता हुआ भक्तिकाल में कबीर, नानक, पद्मनाभ, छीहल, देविदास, बनारसीदास, राजसमुद्र तथा कुशलवीर आदि ने नीति काव्य लिखे।

भक्तिकाल में नीतिकाव्य के तीन रूप प्राप्त हैं-

1. कबीर, नानक, दादू आदि संतों की रचनाओं में कहे गए नीति परक पद।
2. रामचरितमानस, पद्मावत प्रभृति प्रबंधकाव्यों में मिले यत्र-तत्र नीति संबंधी उपदेशों का आनुषंगिक कथाक्रम।
3. जिन्होंने केवल नीतिकाव्य की ही रचना की उनको इस वर्ग में रखा गया है।

इस धारा की प्रथम और महत्वपूर्ण रचना है 'डूंगर-बावनी'। जिसका प्रकाशन पद्मनाभ ने 1486 ई. में की थी। इसमें 53 छप्पय हैं, जिसमें दान, दया, कर्म-फल, नम्रता आदि में जीवन की सफलता और सप्त व्यसन- जुआ, मांस-भक्षण, सुरापान, वेश्यागमन, आखेट, चोरी, परनारी-रमण आदि से बचने को कहा गया है।

1527 ई. में छीहल कवि की 'छीहल बावनी' सामने आया, जो भक्तिकालीन नीति कवियों में विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसमें 53 छप्पय हैं, जिसमें जीवन के विभिन्न व्यावहारिक पक्षों पर सुन्दर उपदेश मिलता है। 16 वीं शती के मध्य में देविदास कृत हस्तलिखित प्रति 'राजनीति के कवित्त' सामने आया। इसमें राजनीति के अतिरिक्त अन्य सामान्य विषयों का प्रभावशाली वर्णन मिलता है।

भक्तिकालीन नीति कवियों में जैन कवि बनारसीदास का विशेष महत्व है। नवरस पद्यावाली, समयसार नाटक, बनारसी विलास, अर्द्ध कथानक, भाषा सुक्तिमुक्तावली आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें कंचन और कामिनी के त्याग तथा सत्य, क्षमा, शील, अपरिग्रह, नम्रता, निर्लोभ, अहिंसा आदि गुणों के निर्वाह पर बल दिया गया है।

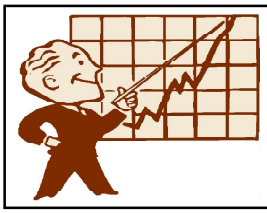
14.6 रीतिकाव्य

भक्ति काल से पूर्व हिंदी साहित्य में प्रचुर मात्रा में रीतिकाव्य रची गयी थी। उस परंपराओं को अक्षुण रखते हुए दो-एक कवियों ने भक्तिकाल में भी कुछ रीतिग्रंथ लिखे। इस सन्दर्भ में सबसे प्रथम नाम आता है कृपाराम का 'हिततरंगिनी' ग्रन्थ। पांच तरंगों में विभाजित इस ग्रन्थ में 400 छंद है। प्रथम तरंग में श्रृंगार के आलंबन नायिका और नायक के विभिन्न भेदोपभेदों

का उल्लेख है। द्वितीय तरंग में सखी और उसके कर्मों तथा दूती, उसके उत्तमादी भेदों एवं कर्मों के उपरांत स्वकीया के सामान्य भेदों का लक्षण उदाहरण सहित निरूपण है, जबकि तृतीय और चतुर्थ तरंगों में क्रमशः परकीय और सामान्य के भेदों का वर्णन किया गया है। अंतिम तरंग में व्यवहार के आधार पर उत्तमादि का तथा मान और गर्व के आधार पर क्रमशः धीरादि और रुपगर्वितादि भेदों के उपरांत अवस्थानुसार दश नायिकाओं का वर्णन किया गया है। प्रथम तरंग में पति, उपपति और वैशिक नामक तीनों भेदों का उल्लेख तो हुआ है, किन्तु नायिकाभेद के समान यहाँ एतद्विषयक लक्षण व उदाहरण देने का प्रयत्न नहीं किया गया है। लक्षण और उदाहरण दोहा आदि छोटे छंदों में होते हुए भी इतने सुगठित हैं कि विषय सहज ही स्पष्ट होता चला जाता है।

कृपाराम के बाद इस धारा में सूरदास का भी नाम आता है। सूरसागर के अनेक पद नायिका-भेद और श्रृंगार रस की सामग्री के शास्त्रीय परिवेश में लिखा गया है। कृपाराम की इस धारा को आगे बढ़ानेवालों में से भक्तिकालीन कवि नन्ददास का भी नाम आता है। रीति निरूपण संबंधी इनके एकमात्र ग्रन्थ है 'रसमंजरी'। जिसकी रचना इन्होंने 1550 ई. के आसपास की है। इसमें दोहा-चौपाई की शैली में नायक-नायिकाओं तथा हाव, भाव, हेला और रतिभाव का परिचय दिया गया है। केशवदास ने भी रसिकप्रिया(1591), कविप्रिया(1601) और छन्दमाला नामक तीन रीतिग्रंथों की रचना की। जिनमें क्रमशः नवरस, अलंकारों और छंदों का निरूपण किया गया है। रसिकप्रिया में सोलह प्रकाश हैं। जहाँ रचयिता ने नायक-नायिका भेद, दर्शन के विभिन्न प्रकार, मिलनस्थल, हाव-भाव, विपलंभ श्रृगार के भेद, कामदशा आदि का चित्रण किया है। कविप्रिया में भी सोलह प्रभाव हैं। छंदमाला दो भागों में विभक्त हैं- प्रथम भाग में 77 वर्णवृत्तों तथा द्वितीय भाग में 26 मात्रावृत्तों को लक्षण-उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है।

इसके अलावा इस परंपरा में रहीम कृत- नायिकाभेद और नगराशोभा तथा न्यामत खां जान कृत- रसकोश और कविवल्लभ आता है। रहीम ने नायिकाभेद में नायक-नायिका भेद और नगरशोभा में विभिन्न वर्णों के अनुसार विभिन्न नायिकाओं का वर्णन किया है। न्यामत खां की भी रसकोश नायक-नायिकाभेद संबंधी विवेचनी ग्रन्थ है। कविवल्लभ में गुण-दोष, अलंकार, छन्द आदि का विवेचन है।



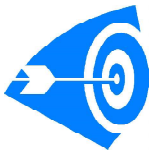
अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. भक्तिकालीन रीतिकाव्य पर अपना विचार प्रकट कीजिए।



14.7 सारांश

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भक्तिकाल में मूलत: भक्ति साहित्य की एक व्यापक धारा प्रवाहित हुए। मगर इसी के साथ-साथ भक्तिकाल में उस परंपरागत कुछ नियमों का पालन करते हुए कुछ कवियों ने साहित्य की रचना की। जिनमें से वीर, नीति, रीति, प्रबंधात्मक चरित काव्य आदि प्रमुख हैं। भक्तिकालीन साहित्य में इन काव्यधाराओं का भी विशेष महत्व हैं। जिससे हिंदी साहित्य भंडार को मजबूती मिलने के साथ-साथ प्राचीन परम्पराओं को भी जानने में हमें मदद मिलती है।



14.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : भक्ति काल से पूर्व हिंदी साहित्य में प्रचुर मात्रा में रीतिकाव्य रची गयी थी। उस परंपराओं को अक्षुण रखते हुए दो-एक कवियों ने भक्तिकाल में भी कुछ रीतिग्रंथ लिखे। इस सन्दर्भ में सबसे प्रथम नाम आता है कृपाराम का 'हिततरंगिनी' ग्रन्थ। पांच तरंगों में विभाजित इस ग्रन्थ में 400 छंद है।

अधिक जानने के लिए ऊपर दिए हुए '**रीतिकाव्य**' को ध्यान से देखें।



14.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र (संपादक), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हिंदी साहित्य का नया इतिहास- राम खेलावन पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हिंदी साहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- हिंदी साहित्य (भाग 1 और 2)- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद।
- भक्ति काव्य की भूमिका- प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।



14.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. 'रणमल्लछन्द' किसकी रचना है ?
2. 'डूंगर-बावनी' की रचना कब और किसने की थी ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. भक्तिकालीन अन्य काव्य धाराओं पर एक संक्षिप्त लेख लीखिए।
2. भक्तिकाल के नीति और वीर काव्य पर टिपण्णी प्रस्तुत कीजिए।
3. भक्तिकालीन भक्तिसाहित्य के तुलना में दुसरे काव्य थोड़ा कमजोर प्रतीत होता है- आलेख प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***